ओ३म्

शास्त्रार्थ आगरा

जो

ता० १९ । २० । २१ फ़ेब्रुएरी सन् १९०१ ई० तक

आर्यसमाज आगरा

और

पं० भीमसेन शर्मा

से

मृतकश्राद्ध विषय पर हुआ

जिस को

आर्यसमाज आगरा ने तुलसीरामस्वामी से सेखबद्ध हस्ताक्षरयुक्त
प्रतिपद का संग्रह और अनुवाद कराकर

स्वामियन्त्रालय-मेरठ

में छपवाया

प्रथमबार १५००　　संवत् १९५८ चैत्र　　मूल्य ≈)

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी.

ओ३म्

निवेदन

इस शास्त्रार्थ में दोनों ही वादी और दोनों ही प्रतिवादी भी थे, अतः शास्त्रार्थ के लेख प्रतिलेख दो २ बहुत जगह एकत्र आपड़े हैं जिन को छापने में यथासम्भव किस पृष्ठ में छपे किस लेख का किस पृष्ठ में किस की ओर से क्या उत्तर है । यह बात उस २ स्थान पर जतलाने का उद्योग किया है तथापि पाठकों को बहुत सावधानी से पढ़ने में विषय का यथार्थ बोध होगा । इस लिये प्रार्थना है कि धैर्य से पूर्वपक्ष और उत्तर पक्षों को मिला २ कर आदि से अन्त तक सब पढ़ें और अन्तिम पृ० ५६ । ५७ में इस का निगमन (निचोड़ वा सार) भी अवश्य पढ़ें जिस से सब ठीक २ भेद ज्ञात होजावे

किस का पक्ष सिद्ध हुवा, यह पाठकों पर ही छोड़ दिया गया है । पढ़ कर समझ लें । जुबानी शास्त्रार्थ को इस में इस लिये नहीं छापा है कि प्रायः वह भी इस लेख का ही व्याख्यान था और श्रोताओं ने ही सत्य वृत्तान्त ज्ञात कर लिया । वादी प्रतिवादी कुछ कल्पना करके अपना २ विजयनाद बजावें तो कोई विश्वास न करेगा ॥

ओ३म्

शास्त्रार्थ आगरा

—=*×*=—

श्री पं० भीमसेन शर्म्मा जी इटावा-निवासी ने निम्न लिखित पत्र प्रथम सर्वत्र फैलाया

ओम्-वर्त्तमान आर्यसमाज से मेरे पृथक् होने का कारण

(तथा धर्मान्दोलनार्थ सूचना)

सर्वसाधारण महाशयों को विदित हो कि यद्यपि पूर्वकाल से भी मैं वेदादि शास्त्र के अनुकूल ही लिखने, कहने तथा मानने का उद्योग करता रहा—तथापि जब से मुझे एक यज्ञ कराने के लिये श्रौतस्मार्त्तकर्मकाण्डसम्बन्धी वैदिक ग्रन्थ विशेष कर देखने पड़े तब से विशेषकर ज्ञात हो गया कि वर्त्तमान आर्यसमाज वेदोक्त धर्म कर्म को वास्तव में नहीं मानता। आर्यसमाज में केवल वैदिक धर्म शब्द का प्रचार मात्र है परन्तु वैदिक धर्म के तत्त्व को जानने वा मानने वालों का अभाव सा है। जब मुझे अनुमान १॥ वर्ष से ऐसा ज्ञात हुआ कि आर्यसमाज में वैदिकधर्म का अभावसा है, तभी से मैं इस समुदाय से अलग होगया था। बीच में यह भी विचार मन में आया कि ये लोग धर्मानुकूल सुहृद्भाव से मुझे समझा दें वा मुझ से कोई समझ लेवे तो अच्छा है। इसी कारण मैंने इन्द्रप्रस्थ में (श्रावण मास वि० ५७ सं०) जब कि सनातनधर्म सभाओं का बृहत्अधिवेशन था, लाला मुन्शीराम जी तथा सेठ लक्ष्मीराम जी, मुं० नारायणप्रसाद जी आदि सभ्यपुरुषों के सम्मुख यज्ञकर्मान्तर्गत स्वनिश्चित पितृश्राद्ध को विचारपक्ष में लेना स्वीकार किया था, जैसा कि मैं आर्यसिद्धान्त भाग १० अं० ७–९ के पृ० ४५ में पूर्व ही छपा चुका था, परन्तु आश्चर्य कि पंजाब तथा पश्चिमोत्तरप्रदेश की प्रतिनिधिसभाओं के अग्रग-

न्ताओं ने प्रतिज्ञा करने पर भी इन विषयों के विचार के लिये कुछ भी उद्योग न किया वरन कृपा कर मेरी सुआशा को निराशा मे मिलादिया ॥

यद्यपि मैंने १॥ वर्ष से समाज में जाना भी छोड़ दिया था और आर्यसिद्धान्त भाग १० के १०-१२ अङ्कों में छपा भी चुका था कि जब तक मेरे विचारपक्षस्थ यज्ञादि कर्म का ठीक २ निर्णय न हो तब तक मुझे कोई आर्य न समझे, मैं वर्त्तमान आर्यसमाजी नहीं हूं। विचार का स्थान है कि जब मैं आर्यसमाज से स्वयमेव प्रकट करके पृथक् होगया था तो (हम लोगों ने इन भी० श० को आर्यसमाज से पृथक् कर दिया) ऐसा छपा कर प्रकाशित करना क्या आवश्यक वा उचित था? (ऐसे द्वेषपूर्वक हुवे वा होने वाले आक्षेपों का कुछ भी उत्तर देना मैं उचित नहीं समझता) तथापि मैं उन महाशयों के इस प्रस्ताव को अपने लिये विशेष कर हितकारी समझता हूं अर्थात् मेरी चाहना को इन आर्यलोगों ने पूर्ण किया। अब मुझे इस का बड़ा हर्ष है कि मेरे साथ किसी मत का बन्धन नहीं रहा केवल वेदशास्त्रों का बन्धन तो मुझे सर्वदा रखना स्वीकार ही है। मैं आर्यप्रतिनिधिसभा मुरादाबाद को धन्यवाद देता हूं कि मेरे पूर्व प्रस्ताव को प्रकारान्तर से स्वीकार किया है। मैं आर्यसमाज तथा धर्मसभादि के सभी समुदायों से मेल रक्खूंगा, मेरा किसी से द्वेष वा वैर नहीं है। सब के लिये निष्पक्ष वेदानुकूल सत्य धर्म को कहूंगा वा लिखूंगा। आर्यसमाज में भी अनेक मनुष्य धर्मान्वेषी, धर्म के श्रद्धालु हैं, उन के लिये तथा अन्य धर्म से प्रेम रखने वालों के लिये अब अच्छा समय आया ॥

मेरे साथ वर्त्तमान आर्यसमाज का जो विवाद हुआ उस का कारण केवल श्राद्ध वा मेषमेधी ही नहीं है किन्तु सभी वैदिक कर्मकाण्ड विवाद का हेतु है। मैं स्पष्ट कहता हूं कि आर्यसमाज श्रीमान् स्वामिदयानन्द सरस्वती जी के मन्तव्य पर भी आरूढ नहीं हैं इसीलिये संस्कारविधि भी आर्यों में ठीक २ नहीं मानी जाती। धर्म के अन्वेषी, श्रद्धालु, धर्म के प्रेमी आर्य वा हिन्दु सब लोगों की सेवा में मेरा विशेष कर निवेदन यह है कि वे महाशय मेरे इस कथन पर विश्वास और शान्ति सन्तोष रक्खें कि श्राद्ध वेदोक्त है। जीवित माता पितादि की सेवा शुश्रूषा यद्यपि कर्त्तव्य धर्म है, तथापि उस का नाम श्राद्ध नहीं है और जिज्ञासुलोगों को अवश्य ही ठीक २ इस का निर्णय होजायगा। तथा हठी लोग कदापि नहीं मानेंगे। यह धर्म का विचार

है कोई लेभगई का काम नहीं है जो शीघ्र ही मन माना छपाकर कोई सिद्ध कर लेवे । मैं जिज्ञासु लोगों को थोड़े काल में क्रमशः कर २ इस विषय का ठीक २ निश्चय कराटूंगा तथा लेख द्वारा भी प्रमाणादि देकर निश्चय कराऊंगा, थोड़ा सन्तोष करें ॥

मुझे ठीक २ निश्चित विश्वास है कि मेरे साथ निष्पक्ष हो कर सुहृद्भाव से कोई सुबोध शास्त्रज्ञ पुरुष कर्मकाण्डविषय में चार छः दिन भी विचार करे तो मुझे मनवा दे वा मेरी बात को वह मानले।मैं पूर्व से भी ऐसा चाहता था और अब भी चाहता हूं पर इस की आशा बहुत कम है । और श्राद्धादि के विषय में कोलाहल सम्प्रति अधिक है । लिखने वाले सम्प्रति अविद्वान् अनेक हैं। अपने २ संस्कारों के अनुसार सब लिखते हैं । अनेक लिखने वालों का मैं एक मनुष्य उत्तर दे भी नहीं सकता और जो उत्तर दे भी सकता हूं तो भी इतने से ही धर्मजिज्ञासुओं को किसी प्रकार का सन्तोषदायक विशेष निर्णय शीघ्र प्राप्त हो नहीं सकता । इस लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि श्राद्धादि कर्म, मुख्य वैदिक धर्म है वा कोई अन्य वैदिकधर्म है इत्यादि निर्णय होना अवश्य चाहिये । इस कारण मैंने इस कार्य की सिद्धि का सुगम उपाय यह सोचा है कि मैं देशाटन करके वैदिकधर्म का निर्णय करूं कराऊं । यद्यपि पूर्वकाल से यह रीति थी कि जिज्ञासु लोग ज्ञानदाता के निकट आया करते थे पर अब ऐसा समय नहीं है । इस से मैं ही जिज्ञासुओं के पास जा जाकर उपदेश करूं,यह विचार स्थिर किया है। परन्तु इस दशा में छापेखाने आदि का प्रबन्ध वा भार मुझ से कोई सच्चा धर्मात्मा सर्वथा ही लेलेवे वही अधिकारी वा अध्यक्ष बन के अपनी इच्छानुसार इस का प्रबन्ध करे।यदि कोई महाशय कार्यालय का पूर्णाधिकार लेना चाहें तो वे मेरे साथ पत्रव्यवहार करें।अथवा कोई अच्छा अभिज्ञ संस्कृतज्ञ पुरुष इस का मेनेजर प्रबन्धकर्त्ता नियत होकर मेरी ओर से ही चलावे।ऐसा होने पर देशाटन हो सकेगा । यदि कोई संस्कृतज्ञ महाशय प्रबन्ध करना चाहें तो वे मुझे लिखें,वेतन यथोचित पत्रद्वारा निश्चित होगा । मैं इस पर्यटन को वैदिकधर्म प्रचार के लिये विशेष उपकारी समझता हुवा अवश्य करना चाहता हूं । इस लिये जिज्ञासु लोग मुझे सूचना देवें कि अमुक २ प्रान्त में हम लोग श्राद्धादि वैदिकधर्म कर्म का निर्णय करना कराना चाहते हैं । उन २ महाशयों

का नाम पता पर्यटन के रजिस्टर में लिखा जावे और जिस प्रान्त में जिज्ञासुओं की अधिकता देखी जाय उधर को पहिले प्रस्थान किया जाय ॥इति॥

आप का—भीमसेनशर्मा—इटावा

आगरा आर्यसमाज ने इस का यह उत्तर दिया कि—

ओ३म्

धर्मान्दोलनार्थ शास्त्रार्थ की सूचना

श्रीमान् पण्डित भीमसेन जी शर्म्मा महाशय ! सविनय नमस्ते

आप की धर्मान्दोलनार्थ सूचना के सम्बन्ध में आप से यह प्रार्थना है कि आर्य्यसमाज आप के निश्चित मृतकपितृश्राद्ध पर सच्छास्त्रानुसार शास्त्रार्थ करने को सर्वथा उद्यत है और अब जब कि आपने स्वयं लोगों को ज्ञान देने की प्रतिज्ञा की है तो जिज्ञासुओं और धर्मानुरागियों की विशेष कर यह अभिलाषा है कि इस विषय पर यदि सम्भव हो तो आप से ज्ञान लें, नहीं तो यदि आप का ही निश्चित सिद्धान्त भ्रममूलक हो तो उस का निर्णय यथावत् होजावे। मनुष्य देह बार २ नहीं मिलता है और न सब मनुष्यों को स्वयं शास्त्र पढ़ने, देखने और विचारने का अवसर मिल सक्ता है और यह तो निश्चित ही है और आप को भी स्वीकृत होहीगा कि सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने के लिये मनुष्यमात्र को सर्वथा उद्यत रहना चाहिये। इस लिये आर्यसमाज आगरा ने इस धर्मान्दोलन को अतीव आवश्यक समझकर यह निश्चित किया है कि अपने (आगरा आर्य्यसमाज के) आगामी २१ वें वार्षिकोत्सव पर आप और आर्य्य प्रतिष्ठित उपदेशक विद्वान् इस विषय पर पूरा २ आन्दोलन करें। इस लिये आप से यह प्रार्थना है कि आप कृपा करके इस अवसर को हाथ से न जाने दें और अवश्य ही प्रेमपूर्वक केवल धर्मान्दोलनार्थ शास्त्रार्थ स्वीकार करें। इस से दो लाभ तो स्पष्ट दीख पड़ते हैं १—यह सम्भव है कि आप का निश्चित सिद्धान्त आप के पहिले सिद्धान्तों की तरह भ्रममूलक हो, तो आप की ही भ्रान्ति दूर हो जावेगी और यदि किसी प्रकार आप का ही वर्त्तमान सिद्धान्त वेदानुकूल निकले तो आर्यसमाज को भी बहुत बड़ा लाभ होगा। २—आप की उक्त सूचना से यह प्रतीत होता है कि आर्य्यसमाज में कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जोकि आपके निश्चित

सिद्धान्त पर आप से विचार करने के लिये उद्यत हो, परन्तु आगरा आर्य-समाज का यह अनुभव और विश्वास है कि बहुत से विद्वान्, शास्त्रवेत्ता, धर्मप्रेमी बड़े उत्साह से इस विषय पर विचार करने के लिये उद्यत हैं। इस से सर्वसाधारण को यह निश्चित होजायगा कि आर्य्यसमाज अन्धपरम्परा पर चलने वालों का समुदाय नहीं किन्तु सत्य के ग्रहण के लिये सदैव उद्यत है। इस लिये आप अवश्य ही कृपा करके ता० १७, १८, १९ फ़रवरी सन् १९०१ पर आगरे पधारें और आर्य्यसमाज आगरा आप के आने जाने और ठहरने का कुल खर्च अपने ऊपर लेने को तैयार है॥

आप का दर्शनाभिलाषी सेवक

कृपाशङ्कर प्राज्ञ

मन्त्री आर्य्यसमाज आगरा

इस पत्र के उत्तर का प्रत्युत्तर पहुंचने में देरी होने से पं० भीमसेन जी ने आगरा समाज को लिखा कि—

ओ३म्

सरस्वती प्रेस—इटावा ९। २। ०१

श्रीमन् महाशय ! नमस्ते

आप की सेवा में ता० ६। २। ०१ को रजिस्ट्री पत्र भेज चुका हूं उत्तर आज तक नहीं आया। मैं शास्त्रार्थ का स्वीकार लिख चुका हूं। आप जब तक उत्तर न दें तब तक मेरे आने का निश्चय नहीं हो सकता। आप पर बुलाने का भार है। मैं प्रथम भी लिख चुका हूं। आप अतिशीघ्र उत्तर दें। उत्तर न आने पर शास्त्रार्थ रुक जाने के कारण आप लोग ही होंगे॥

आप का—

भीमसेनशर्मा

और साथ ही १०) पांच मनुष्यों के मार्गव्ययार्थ पं० भीमसेन जी के पास भेजा गया, जिस की प्राप्ति का स्वीकार पूर्वनाम पं० सुन्दरलालशर्मा वर्त्तमान नाम सत्यव्रतशर्मा (जो पं० भीमसेनशर्म्मा के जामाता व सरस्वतीयन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ता हैं) ने इस प्रकार दी कि—

आप का भेजा हुआ १०) रु० प्राप्त हो गया । पं० जी आवेंगे अवश्य ३ विजनौर गये वहां से सीधे आवेंगे ॥

भवत्सु० सत्यव्रतशर्मा आर्य

इस से पूर्व पं० भीमसेन जी का यह पत्र आ चुका था कि—

ओ३म्

सं० १० । २ । ०१

सरस्वतीप्रेस इटावा

श्रीमन् ! महाशय ! नमस्ते

कृपापत्र उपलब्ध हुआ, वृत्त ज्ञात हुआ । हम आप के लेखानुसार जैसा कि हम पूर्व लिख चुके हैं, अर्थात् १८ । १९ फ़र्वरी तक आगरा पहुंचने का अवश्य उद्योग करेंगे।आप का भेजा हुआ रुपया भी कल प्राप्त हो जायगा यह आशा है । रहा यह कि चतुर्थ नियम सो वहां आने पर जैसा होगा वैसा निश्चय हो जायगा ॥ किमधिकम् ॥

भवच्छुभेच्छुः—भीमसेन शर्मा

तदनुसार १६ ता० को आगरे आकर पं० भीमसेन जी ने समाज को निम्नलिखित सूचना दी कि—

ओ३म्—

श्रीमान्—मन्त्री आर्यसमाज—आगरा—योग्य

मैं आज ता० १६ को १२ बजे दिनके आगरे में आप के बुलाने अनुसार आ गया हूं । आप शास्त्रार्थ की तयारी यथासम्भव शीघ्र करें जिस से व्यर्थ समय न जावे । शास्त्रार्थ का स्थान यहां के किसी रईस का हो तो अच्छा है । तथा समय नियत होना आदि भी विचार स्थिर कीजिये । मेरी प्रकृत्यनुसार यह स्थान (सनाढ्यसभा का मन्दिर) विशेष कर था—इस से यहीं ठहरना उचित समझा गया । उत्तर शीघ्र देवें ॥

ता० १६ । २ । ०१ ई० वजीरपुरा आगरा—आप का—भीमसेन शर्मा

नोट—क्या आप को मथुरा में यह मन्त्र नहीं दिया गया कि समाज के किसी स्थान पर आप न ठहरें, किन्तु सनातनधर्मियों के स्थान पर ठहरें ?

यह पत्र सायंकाल को समाज में आया था । अगले दिन प्रातः दूसरा पत्र आया कि—

ओ३म्—आगरा—वजीरपुरा ता० १७ । २ । ०१

श्रीमान् मन्त्री आर्यसमाज आगरा योग्य—

आप की सेवा में कल एक पत्र भेज चुका हूं कि मैं आप के बुलाने से शास्त्रार्थ के लिये आ गया, आप शास्त्रार्थ की शीघ्र तयारी करें, पर आप ने मेरे उस पत्र का अब तक कुछ उत्तर नहीं दिया । मैं नियमादि स्थिर करने के लिये ही एक दिन पहिले से आया हूं । आप २४ घण्टा पहिले मुझे यह भी सूचित करें कि मेरे साथ कौन पं० महाशय आप की ओर से शास्त्रार्थ के लिये नियत होंगे । कृपा कर आप अपनी ओर से शास्त्रार्थ के विशेष नियम भी लिख भेजिये, जिन को देख कर मैं अपनी राय लिखूंगा । और शास्त्रार्थ लेखबद्ध तो होना ही चाहिये, इस को तो आप भी अच्छा ही समझेंगे । लिखा पढ़ी में देर होना सम्भव है इस लिये आप भी उचित समझ कर दो भद्र पुरुष भेजिये जो यहां आकर समक्ष में सब विचार स्थिर कर लेवें ॥

आप का—भीमसेन शर्मा

इस पत्र के उत्तर में पत्रद्वारा नियम स्थिर करने से काल वृथा व्यतीत अधिक होगा, इस विचार से समाज के मन्त्री आदि कई पुरुष पं० भीमसेन जी के पास चले गये और ज़ुबानी यह स्थिर कर आये कि जैसा नीचे के पत्र से जाना जायगा । परन्तु पं० भीमसेन जी ने उस स्थिरता पर भी यह कहा था कि कुछ देर विचार करके पक्का विचार होगा । इसलिये वहां लिखा पढ़ी न हो सकी । पं० भीमसेन जी के पक्के विचार की प्रतीक्षा करके ३॥ बजे दोपहर को निम्नलिखित पत्र समाज ने पं० भीमसेन जी के पास भेजा—

नं० १ ओ३म्

श्रीयुत पं० भीमसेन जी ! नमस्ते

आप के ता० १७ । २ । ०१ के पत्रानुसार आप की सेवा में उपस्थित हो कर मैंने निवेदन किया था और आप ने स्वीकार किया था । तदनुसार आप को सूचित करता हूं कि कल ता० १८ को १० बजे से २ बजे दिन तक ४ घंटे तक प्रतिदिन शास्त्रार्थ होना चाहिये । जिस में—

१—आप और आर्यसमाजस्थ पण्डित लोग श्रीमद्दयानन्द अनाथालय आगरे में पधारें ।

२—स्थान के १ भाग में आप और आप के सहायक पण्डित और दूसरे

भाग में आर्यसमाजस्थ पण्डित बैठ कर एक २ घंटा समय तक लेख प्रति लेख करते जावें और हस्ताक्षर करके एक दूसरे के पास भेजते जावें ॥

३–समयविभागादि के ठीक बर्त्ताव कराने के लिये मुझे नियत किया गया है॥

४–इस ४ घंटे में जो लेखप्रतिलेख हुआ करेगा वह सुस्पष्ट करके प्रतिदिन रात्रि में ७ बजे से १० बजे तक ३ घंटे में डेढ़२ घंटे के दो भाग करके अपने २ व्याख्यानों द्वारा सर्वसाधारण को सुना दिया जाया करेगा ।

५–शास्त्रार्थ में आप मृतपितृनिमित्तक पिण्डप्रदान सर्वाङ्ग सिद्ध करेंगे । और आर्य लोग उस का खण्डन करेंगे ॥

कृपया हस्ताक्षर करके उक्त विधान को स्वीकृत कर भेजिये १७।२।०१समय३॥बजे

कृपाशङ्कर–मन्त्री आर्यसमाज

ऊपर का लिखा पत्र लेकर मनुष्य वजीरपुरा आगरा को गया ही था कि इतने में अनुमान ४॥ बजे पं० भीमसेन जी का एक पत्र जो आगे छपा है, एक विज्ञापन के साथ आया । वह विज्ञापन भी पाठकों के अवलोकनार्थ आगे छापते हैं । देखिये तो सही इस चातुर्य्य को कि आर्यसमाज की ओर से यह विज्ञापन बंटवाया जावे कि जिस से विना ही शास्त्रार्थ के आर्यसमाज ने पं० भीमसेन जी के पक्ष को स्वीकार करलिया समझा जावे । भला इन चातुर्य्यों को समाज न समझता ! !

पं० भीमसेन जी का पत्र और विज्ञापन यह थाः–

ओ३म्

वजीरपुरा–आगरा १७ । २ । ०१

श्रीमान्–मन्त्री आर्यसमाज आगरा योग्य

आप प्रातःकाल मेरे पास आये और जैसी रीति शास्त्रार्थ के लिये आपने कही वह अधिकांश मुझे स्वीकार है । उस में एक तो निवेदन है कि आप जो कुछ कहते हैं वे सब नियम लिख देवें ॥

द्वितीय यह है कि मेरे लिये व्याख्यान का स्थान अन्य कोई मकान हो और आप लोगों का व्याख्यान अपने आ० स० के स्थान में रहै । मैं भी वहीं आकर सुना करूंगा तथा नोट करूंगा । और यदि आप चाहैं कि मेरा भी व्याख्यान आ० स० के मकान में ही हो तो इस विज्ञापन को आप अपनी ओर से छपा कर ५०० मेरे पास भेजदें । मैं बटवा दूंगा ।

तृतीय यह है कि आर्यसमाज में किसी की ओर से असभ्य अनुचित वा कठोर व्यवहार न होने की प्रतिज्ञा आप लिखें ॥

चतुर्थ यह कि शास्त्रार्थ की अन्त समाप्ति के दिन मेरा ही व्याख्यान हो, आप इस का स्वीकार भी लिखिये ॥

शास्त्रार्थसम्बन्धी सब नियमों पर दोनों के हस्ताक्षर होकर दोनों के पास रहें॥

लिखने के समय लिखने वाला स्वयं अपने ही हस्ताक्षर करे, ऐसा न हो कि अन्य के लेख पर अन्य कोई एक ही हस्ताक्षर करता रहे ॥

आप का—भीमसेन शर्म्मा

विज्ञापनम्

आगरा—निवासी सर्वसाधारण भद्र पुरुषों को सूचित किया जाता है कि जिस मृतकश्राद्ध का वर्त्तमान आर्यसमाज खण्डन करता है, उसी मृतक श्राद्ध विषय पर इटावा—निवासी पं० भीमसेन शर्म्मा आज ता० फ़र्वरी सन् १९०१ को बजे से स्थान में व्याख्यान देवेंगे अर्थात् मरे हुवे पिता आदि का श्राद्ध करना वेद तथा आर्षग्रन्थों से सिद्ध करेंगे । आशा है कि सब सज्जन पुरुष इस वेदोक्त धर्म को सुनने के लिये कृपा कर पधारेंगे और हम लोगों को कृतार्थ करेंगे ॥

भवदीय निवेदयिता

इस का उत्तर समाज ने नीचे लिखे अनुसार दिया:—

ओ३म्

श्रीयुत पं० भीमसेन शर्म्मा जी योग्य ! नमस्ते

आप के ११ । २ । ०१ के द्वितीय पत्र के उत्तर में निवेदन है कि आप की सेवा से तद्विषयक पत्र आज ता० ११ । २ को ३॥ बजे भेजा गया है, जिस विषय में मुझ से आप से बात चीत हो चुकी थी ॥

२—शास्त्रार्थ को लेखबद्ध करने और सायंकाल में व्याख्यान द्वारा स्पष्ट करने के लिये एक ही स्थान (आर्यमन्दिर) ठीक है ॥

३—विज्ञापन केवल आप के व्याख्यान का नहीं बटेगा, किन्तु दोनों पक्ष के व्याख्यानों का एक ही विज्ञापन होगा ॥

४—असभ्यशब्दप्रयोग न कर सकने की प्रतिज्ञा आप की ओर से भी लिख

भेजनी चाहिये। आर्यसमाज को तो यह स्वीकृत ही है कि अपशब्द किसी को कभी न कहा जावे ॥

५–शास्त्रार्थ के वादी आप हैं, अतः अन्तिम लेख और व्याख्यान आर्यसमाज की ओर का रहेगा ॥

६–शास्त्रार्थ के नियमों पर उभयपक्ष के हस्ताक्षरयुक्त लेख दोनों के पास रहें, यह ठीक स्वीकृत है ॥

७–लिखने के समय आद्योपान्त शास्त्रार्थपत्रों पर उभयपक्ष से एक ही पुरुष हस्ताक्षर करता रहेगा ॥

६ बजे सायंकाल १७ । २ । ०१ आप का सुहृद्–

कृपाशङ्कर–मन्त्री आर्यसमाज आगरा

इस पर समाज के इस पत्र का और ३॥ बजे दिन वाले पत्र का (दोनों का) उत्तर पं० भीमसेन जी ने यह दिया कि–

ओ३म्

ता० १७ । २ । ०१ वजीरपुरा–आगरा ७॥ बजे सायम् ।

श्रीमान् मन्त्री आर्यसमाज आगरा योग्य

आप के पत्र नं० १ व २ का उत्तर यह है कि आज प्रातःकाल आप मुझ से मिलने के समय जो कह गये थे, तथा अपने पूर्व पत्रों के लेख से अब आप का यह लेख विरुद्ध है कि ४ घण्टे लेखनीबद्ध और १॥ घण्टे व्याख्यान द्वारा शास्त्रार्थ हो। इस दशा में मेरा निश्चय है कि ऐसे पत्रों से बहुत कालक्षेप होगा और शास्त्रार्थ होना कठिन होगा। इस लिये यदि आप शास्त्रार्थ कराना चाहते हैं तो २ अथवा ३ मुख्य २ भद्र पुरुष यहां चले आइयेगा। जिस से कि सम्मुख बात चीत होकर शास्त्रार्थ के नियम स्थिर हो जावें और उन्हीं नियमों पर शास्त्रार्थकर्त्ता वादी प्रतिवादी दोनों के हस्ताक्षर दोनों कापियों पर होकर परस्पर एक को दूसरे की हस्ताक्षरी कापी मिल जावे। तो सम्भव है कि कल प्रातःकाल से शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हो–इत्यलम् ॥

ह० भीमसेन शर्म्मा

यद्यपि समाज के लेख में जुबानी स्थिर किये हुवे के विरुद्ध कुछ भी न था और न पं० भी० जी ने ब्यौरेवार कुछ विरोध बताया, परन्तु उन का तो अभ्यास ही गोलमोल इबारत "अधिकांश" आदि लिखने का है।

समाज ने यह समझा कि कभी इसी मिष से शास्त्रार्थ न हो, जैसे बने वैसे और जैसे ये कहैं वैसे ही नियम मान कर शास्त्रार्थ कर लिया जाय, समाज के लोग फिर पं० भी० जी के पास गये और निम्नलिखित नियम स्थिर करके हस्ताक्षर कर और कराय लाये:--

शास्त्रार्थ के उभयपक्षस्वीकृत नियम

१–शास्त्रार्थ दयानन्द अनाथालय हींग की मण्डी में ता० १९ फर्वरी सन् १९०१ ई० से होगा ।।

२–स्थान के एक भाग में प० भीमसेन शर्म्मा और उन के सहायक पण्डित, दूसरे भाग में आर्यसमाजस्थ पण्डित बैठकर आध आध घण्टा तक लेखप्रतिलेख करते जावें और हस्ताक्षर करके एक दूसरे के पास भेजते जावें। समय नौ बजे से बारह बजे तक दिन में होगा। उक्त स्थान के जिस भाग को पण्डित भीमसेन शर्मा पसन्द करें, ले लेवें ।।

३–इन नियमों के पालन कराने का काम सेठ श्यामलाल जी लुहारगली वाले करेंगे ।।

४–समाजमन्दिर में जो कुछ लेख प्रतिलेख हुआ करेगा, वह सुस्पष्ट करके प्रतिदिन ढाई घण्टे में व्याख्यान द्वारा सर्वसाधारण को सुना दिया करेंगे, जिस में प्रथम दिवस प्रथम व्याख्यान आर्यसमाजस्थ पण्डित सवा घण्टे करेंगे, पश्चात् पं० भीमसेन शर्म्मा सवा घण्टा करेंगे। और दूसरे दिन प्रथम पं० भीमसेन शर्म्मा पश्चात् आर्यसमाजस्थ पण्डित करेंगे और इसी क्रम से आगे होगा ।।

५-आर्यसमाज का यह पक्ष है कि जीवित माता पिता आदि पितृ कहलाते हैं, उन्हीं की सेवा करना पितृयज्ञ है और पण्डित भीमसेन शर्मा का यह पक्ष है कि मृतक माता पिता आदि के नाम से पिण्डादि देने का नाम पितृयज्ञ और श्राद्ध है और जीवित की सेवा का नाम पितृयज्ञ वा श्राद्ध नहीं ।।

६–दोनों अपने अपने पक्ष का मण्डन और दूसरे का खण्डन वेद और आर्षग्रन्थों के द्वारा करेंगे ।।

७—आर्यसमाज की ओर से कोई अनुचित व्यवहार शास्त्रार्थ में न होगा, जिस से किसी प्रकार से शास्त्रार्थ में विघ्न न होने पावे। और न पण्डित

भीमसेन शर्मा की तरफ़ से होने पावे— २॥। बजे ता० १८ । २ । ०१

ह० भीमसेन शर्मा (ह०) कृपाशङ्कर—मन्त्री आर्यसमाज आगरा

विज्ञापनम्

आगरा—निवासी सर्वसाधारण भद्र पुरुषों को सूचना दी जाती है कि ता० १९ फ़र्वरी सन्ध्या के ७ बजे से ८।। बजे तक आर्य समाज के मकान मोती-कटरा में आर्यसमाज के पण्डितों के साथ पं० भीमसेन शर्मा का शास्त्रार्थ होगा अर्थात् पं० भीमसेन शर्मा वेद और आर्षग्रन्थों के प्रमाणों से मृतक पुरुषों का श्राद्ध करना अपने व्याख्यान द्वारा सिद्ध करेंगे और आर्यसमाजी पण्डित लोग मृतक श्राद्ध का खण्डन तथा जीवितों के श्राद्ध का मण्डन वेद-प्रमाणों से सिद्ध करेंगे । इस लिये सब महाशय पूर्वोक्त समय उक्त स्थान में पधारें और सुनकर लाभ उठावें ।। कृपाशङ्कर मन्त्री आर्यसमाज आगरा

यह ऊपर का विज्ञापन नगर में बांटा गया ।।

इन नियमों के अनुसार ता० १९ को ८ बजे से श्रीमद्दयानन्द अनाथा-लय के स्थान में उभयपक्ष के पण्डित शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुवे । स्थान के एक भाग में पं० भीमसेन जी शर्मा और पं० मुकुन्ददेवादि उनके सहायक पण्डित लोग, दूसरे भाग में पं० तुलसीराम स्वामी तथा उन के सहायक पं० देवदत्त शास्त्री आदि समाज के पण्डित आसीन हुवे । समयविभाग का प्रबन्ध सेठ श्यामलाल जी के हाथ में दिया गया । प्रथम घण्टी बजते ही दोनों पक्ष वालों ने अपने २ पक्ष के मण्डन और परपक्ष पर प्रश्न इस प्रकार उपस्थित किये जैसा कि नीचे छपे लेखों से जाना जायगा ।। आर्यसमाज का प्रथम पत्र—

ओ३म् ॥ यजुः २ । ३१ में—

(अत्र पितरो मादयध्वम् यथाभाग०)

इस मन्त्र के पूर्वार्ध में पितृपितामहादि वृद्धों को तृप्त करने, भोजन कराने के लिये * आज्ञा है और उत्तरार्ध में जब वे भोजन कर चुकें,तब उन से तृप्ति का प्रश्न है ।। २—यजुः २ । ३३ में—

* परमेश्वर की ।।

* आधत्त पितरोगर्भं कुमारं० ॥

इस मन्त्र में पितरों को गर्भाधान करने का आदेश † है ॥

३—ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः० ॥

यजुः २।३४ में अन्न जल दुग्धादि से पितरों का तृप्त करना विहित है ॥

१—जब कि भोजन कराने और कर चुकने पर तृप्ति का प्रश्न है तो यह संभव नहीं कि लोकान्तरस्थ पितरों की तृप्ति का प्रश्न किया जा सके ॥

४—आयन्तु नः पितरः ० ॥

(यजुः १९।५८) इस मन्त्र में पितरों का आना, जाना, बोलना, अन्न से तृप्त होना लिखा है तो जीवतों में ही संभव है, मृतों में नहीं। अपने पुत्रों की रक्षा भी जीवित ही कर सकते हैं। मृतक नहीं ॥

२-गर्भाधान भी जीवित ही कर सकते हैं। मृतक नहीं ॥

३-आप का पक्ष इन मन्त्रों से इतना ही नहीं रहता कि श्राद्ध मृतनिमित्तक पिण्डदानादि का नाम है, किन्तु मृत पितरों का आना, जाना, बोलना, रक्षा करने, भोजन करने आदि को मृतों में घटाना भी आप का पक्ष है ॥

५—एतद्वः पितरो वासः० ॥

(यजुः २।३२) में पितरों को वस्त्र पहराना लिखा है। जब कि पितरों का आना जाना बोलना वस्त्र पहरना आदि सभी व्यवहार है, तब जीवितों में क्या संदेह है ॥

कृपा कर निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर युक्ति तथा प्रमाणसहित दीजिये ॥

प्रश्नाः

(१ वेद में "गर्भमाधत्त पितरः" (यजुः अ० २ मं० ३४) यह वाक्य आया है तो क्या मृत पितृ गर्भाधान कर सकते हैं? यदि कर सकते हैं तो सश-

---

टिप्पण * इस मन्त्र का अर्थ स्वामी जी महाराज के आशय से यह है जैसा कि नीचे लिखा है। परन्तु समाज ने स्वामी जी कृत अर्थ को इस शास्त्रार्थ में विवादास्पद समझा जाने से बचाने के लिये प्रस्तुत नहीं किया ॥

(पितरः) हे पितृजनो! (गर्भम्) अपनी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न औरस (कुमारम्) अपने पुत्र को (पुष्करस्रजम्) जो पुष्पमाला पहिने अर्थात् समावर्त्तन कराके आया है, उसे (आधत्त) सब प्रकार धारण कीजिये (यथा) जिस प्रकार से कि (इह) इस कुल में (पुरुषः) पुरुष=सन्तति (असत्) होवे ॥

† परमेश्वर का

रीर हैं वा अशरीर ? और उन के शरीर पाञ्चभौतिक हैं वा किसी भूत विशेष के ? यदि किसी भूतविशेष के हैं तो रेतःसेचनक्रिया कैसे बनेगी और वे कहां रहते हैं? यदि अशरीर हैं तो भोग कैसे होता है ? पुनः नित्य हैं वा अनित्य हैं? यदि जन्म लेते हैं तो नित्य कैसे और जन्म लेने का कौन हेतु ? और नित्य की सृष्टि सम्भव है तो सृष्टि नित्य होती है वा अनित्य ? और नित्य ही है तो जन्म मरण का समय कितना नियत है और जिन का वंशोच्छेद होजावे उन के पितृ क्या खाते हैं और कहां से ? और तीन ही पीढ़ी की क़ैद क्यों ? और पितर केवल मानुषी सृष्टि के बनते हैं कि पशु आदि के भी?

(२) पितृयज्ञ नित्यकर्म है तो जिस के पिता आदि तीनों पुरुष जीते हैं, वह किस के सम्बन्ध से पितृयज्ञ करे । यदि नित्य नहीं तो पञ्चमहायज्ञों की पूर्त्ति आप के यहां कैसे ?

(३) और पितरों का आवागमन है तो किंहेतुक और कियत्कालिक है ?

(४) पितृसम्बन्ध केवल जीव वा शरीर वा विशिष्ट में होता है ? और पितर (मृत) रक्षा कैसे करते हैं ? इति ॥ रामप्रसाद-प्रधान आर्यसमाज

पं० भीमसेन जी ने उत्तर लिखा कि—

(अत्र पितरो मादयध्वं०) मन्त्रे जीवितानांनामैवनास्ति । यथा मया मृतपितृणांश्राद्धंमृतानामितिदर्शितं तथाभवद्भिरपिजीवितानांश्राद्धंकार्यमिति मन्त्रादिप्रमाणेषु दर्शयितव्यम् ॥

(आधत्त पितरो०) अस्यमन्त्रस्य शतपथादिग्रन्थप्रमाणैर्मध्यमपिण्डस्य पत्न्याःप्राशनेविनियोगः । मनुनाप्युक्तम्—मध्यमंतुततःपिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी । तत्र पिण्डप्राशनेमृताएवपितरःप्रार्थ्यन्ते—हेपितरोयूयंकुमारंपुमांसं गर्भमाधत्त । गर्भधारणंकुरुत—येनस्थिरएवस्यादिति ॥

ऊर्जंवहन्तीरितिमन्त्रस्य पिण्डानामुपरिजलसेचनेविनियोगोऽस्ति तत्रोर्जं वहन्तीरितिस्त्रीलिङ्गाआपःप्रार्थ्यन्ते यूयंमपितॄन्तर्पयत * ॥

लोकान्तरस्थाएवपितरआहूयन्तेआगच्छन्ति तएवभुञ्जते ॥

(आयन्तुनःपितरः०) अत्रायान्तु—इत्यशुद्धम् । अत्रापिशतपथादिप्रमाणैः प्रतीयतेलोकान्तरस्थाएवागच्छन्ति *।यथा चेश्वरः सूक्ष्मःपरोक्षोऽपिसर्वप्रकारैः प्रार्थ्यतेतथापितरोऽपि ॥

* इतिशब्दाऽप्रयोगश्चिन्त्यः

(एतद्वः पितरोवासः०) इतिमन्त्रेणपिण्डानामुपरिसूत्रपातनंपितृभ्योवस्त्र-दानमपिशतपथानुकूलम् ।। ह० भीमसेनशर्मा

समाज का अनुमान था कि शास्त्रार्थ भाषा में होगा । क्योंकि संस्कृत का भी पीछे भाषानुवाद करना ही पड़ेगा । परन्तु पं० भीमसेन जी ने संस्कृत में लिखना आरम्भ किया, तब आगे से उन की इच्छानुसार समाज ने भी संस्कृत में ही लिखना आरम्भ किया । पं० भीमसेन जी के ऊपरके लेख का भावार्थ नीचे लिखे अनुसार है जो उन्होंने समाज के उत्तर में लिखा है:—

"अत्रपितरोमादयध्वम्० इस मन्त्र में "जीवतों" का नाम ही नहीं है । जैसे मैंने मृत पितरों के श्राद्ध में "मृतों का" यह दिखलाया । इसी प्रकार आप भी मन्त्रादि के प्रमाणों में "जीवतों का श्राद्ध करना" यह दिखलाइये।।

शतपथादि * के प्रमाणों से (आधत्त पितरो गर्भम्०) इस मन्त्र का विनियोग इस विषय में है कि पत्नी बीचले पिण्ड को खावे । ऐसा ही (मध्यमं तु ततः पिण्डम्०) मनु ने भी कहा है । यहां पिण्ड खाने में मृतपितरों से ही प्रार्थना है कि हे पितरो ! आप पुरुष गर्भ का आधान करें=गर्भाधान करें जिस से स्थिर हो हो ।।

ऊर्जं वहन्तीः० इस मन्त्र का विनियोग पिण्डों पर जलसेचन में है । उस में इस मन्त्र से स्त्रीलिङ्ग (आपः) जलों की प्रार्थना है कि तुम मेरे पितरों को तृप्त करो ।।

आयन्तु नः पितरः० इस में आयान्तु यह अशुद्ध † है। इस में भी शतपथादि प्रमाणों से प्रतीत होता है कि लोकान्तरस्थ ही आते हैं जैसे ईश्वर सूक्ष्म और परोक्ष भी सब प्रकारों से प्रार्थना किया जाता है वैसे पितर भी ।।

एतद्वः पितरोवासः० इस मन्त्र से पिण्डों पर सूत डालना, पितरों को वस्त्र देना भी शतपथ के अनुकूल है ।। ह० भीमसेन शर्मा

आप देखते हैं कि पं० भीमसेन जी ने समाज के प्रश्नों का उत्तर कहां तक दिया है । अस्तु । अब पं० भीमसेन जी का पूर्व पक्ष और समाज का उत्तर पक्ष देखिये । पं० भीमसेन जी का पूर्व पक्ष यह था:—

---

* ज्ञात हो कि (आधत्त पितरः०) मन्त्र का शतपथ में वर्णन ही नहीं फिर मध्यमपिण्डप्राशन की कथा ही क्या है ।।

† अपनी अशुद्धियें भी नोट में " चिन्त्य " कह कर दिखलाई हुइयों पर ध्यान दीजियेगा ! यन्तु का यान्तु तो लेखभ्रम ही है ॥

ओ३म् ॥ अथमृतपित्रादीनांश्राद्धस्यप्रतिपादनम् । अपसव्यमग्नौकृत्वा सर्वमावृत्यविक्रमम् । अपसव्येनहस्तेननिर्वपेदुदकंभुवि॥१॥ त्रींस्तुस्तस्माद्धविः-शेषात्पिण्डान्कृत्वासमाहितः । औदकेनैवविधिनानिर्वपेद्दक्षिणामुखः ॥२१५॥ इत्यादिमानवधर्मशास्त्रश्लोकैःपिण्डदानंमृतेभ्यएवसङ्गच्छते ॥

ध्रियमाणेतुपितरिपूर्वेषामेवनिर्वपेत् । विप्रवद्वापितंश्राद्धेस्वकंपितरमा-शयेत् ॥ म० ३ । २२० ॥ ध्रियमाणेजीवतिसतिपितरिपूर्वेषांपितामहादीनामेव नाम्नापिण्डान्निर्वपेदितिकथनादवसीयते मृतेपितरितन्नाम्नापिण्डदानमस्त्ये-वेति । अन्यच्च-विप्रान्तिकेपितॄन्ध्यायन्निति (२२४) कथनादपिस्पष्टमेवा-याति यद्भोजनीयविप्रेभ्योभिन्नाएवमृताःपितरस्तेषामेवध्यानंकार्यम् ॥

तथा—पितायस्यनिवृत्तःस्याज्जीवेच्चापिपितामहः ॥ २२१ ॥ इतिकथना-दपियस्यपितामृतःस्यात्तेनस्वपितृनाम्नापिण्डदानंकार्यम् । एभिर्मानवधर्म-शास्त्रप्रमाणैर्मृतानांश्राद्धंसिद्धमेवास्ति । योब्रूयाद्वेदविरुद्धंकथनमिदं स वेदम-न्त्रानुदाहृत्यमन्त्रैःसाकंविरोधंदर्शयेत् । असतिविरोधेमीमांसादर्शनेप्रतिपाद-नादानुकूल्यमेवावगन्तव्यम् ॥ ह० भीमसेन शर्मा

अर्थ—अब मृत पिता आदि के श्राद्ध का प्रतिपादन किया जाता है । (अपसव्यमग्नौ०) इत्यादि मनु के श्लोकों से मरों ही के लिये पिण्डदान घटता है । (ध्रियमाणे तु पितरि०) इत्यादि मनु ३ । २२० से निश्चय होता है कि पिता जीवता हो तो पितामहादि के ही नाम से पिण्ड दे । और पिता मर जाय तब उस के नाम से पिण्ड दे । और (विप्रान्तिके पितॄन्ध्यायन्०) इत्यादि मनु २२४ से भी स्पष्ट होता है कि भोजनीय ब्राह्मणों से भिन्न ही मृत पितर हैं, उन्हीं का ध्यान करना चाहिये । तथा (पिता यस्य निवृत्तः स्यात्०) इत्यादि मनु २२१ के कथन से भी जिस का पिता मर जाय उसको अपने पिता के नाम से पिण्डदान करना चाहिये ॥ इन मनुस्मृति के प्रमाणों से मुर्दों का श्राद्ध सिद्ध ही है । जो कहे कि यह कथन वेदविरुद्ध है, वह वेद-मन्त्रों को उदाहृत करके मन्त्रों के साथ विरोध दिखलावे । विरोध न हो तो मीमांसादर्शन में प्रतिपादनानुसार आनुकूल्य ही समझना चाहिये ॥

ह० भीमसेन शर्मा

आर्यसमाज ने इस का निम्नलिखित उत्तर दिया:—

ओ३म्

आर्षंधर्मोपदेशंचवेदशास्त्राऽविरोधिना । यस्तर्केणानुसंधत्तेसधर्मंवेदनेतरः ॥
इतिमनुवचनेनैवभवद्भिर्न्यस्तानिमनुवचनानिविरुध्यन्ते। तत्र वेदशास्त्राऽविरोधिनातर्केणाऽनुसंधानस्यविहितत्वात् । तानिवचनानिचाऽस्मदुद्धृतेभ्यो वेदमन्त्रेभ्योविरुध्यन्तएव, अस्मल्लिखिततर्केभ्यश्च ॥

२—"बुद्धिपूर्वाद्ददातिः" इतिवैशेषिकसूत्रेऽपिबुद्धिपूर्वदानस्यविहितत्वात् मृतेषु चबुद्धिपूर्वकदानासंभवात् ।

वैशेषिकदर्शने (५ । ३ । ४) आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात् इतिवचनादपिभवत्पक्षोविरुध्यते । कृतहानमकृताभ्यागमश्चप्रसज्यते ॥

३—नकर्मणाऽन्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च (सां० १ । १६)

४—नायौक्तिकस्यसंग्रहोन्यथाबालोन्मत्तादिसमत्वम् (सां० १ । २६)

अनेनसूत्रेणाऽपिभवद्भिर्न्यस्तानिवचनानिअयौक्तिकानिविरोधंप्राप्तानि ॥

५—वेदप्रमाणराहित्येन केवलंमनुवचनविन्यसनेनचाऽपिप्रतिज्ञातोभवत्पक्षःशिथिलोभवति । तत्रवेदमन्त्रप्रमाणानामावश्यकत्वेननियतत्वात् ॥

६—जीवतांश्राद्धनिषेधवचनस्याऽपिभवद्भिर्न्यस्तवचनेष्वसत्वात् । प्रतिज्ञातपक्षप्रतिपक्षयोश्चभवत्पक्षस्यानुदितत्वात् साध्यसाधनाऽभावप्रसक्तिश्च ॥

अर्थ—(आर्ष धर्मो०) इत्यादि मनु के वचन से ही आप के लिखे मनु-वचन विरुद्ध हैं क्योंकि उस में वेदशास्त्र के अविरोधी तर्क से अनुसंधान (तहक़ीक़) करना कहा है । वे (आप के लिखे) वचन, हमारे लिखे (देखो पृ० १३) वेदमन्त्रों और हमारे लिखे (देखो पृ० १४) तर्कों से भी विरुद्ध हैं ही ॥

२--(बुद्धिपूर्वाद्ददातिः) इस वैशेषिक सूत्र में भी बुद्धिपूर्वक (जान बूझ कर) दान कहा है और मरों को जान बूझ कर दे नहीं सकते । (आत्मान्तरगुणा०) इस वैशेषिक ५ । ३ । ४ सूत्र में भी कहा है कि अन्य के गुण अन्य में कारण नहीं हो सकते । इस से भी आप का लेख विरुद्ध है । और (मृतश्राद्ध का फल पितरों को पहुंचता माने तो) कृत कर्म की हानि और विना किये कर्म का फल मिलना रूप दोष भी आप के मत में आता है ॥

३—(न कर्मणाऽन्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च । सांख्य १ । १६) और ४—(नायौक्तिकस्य संग्रहोन्यथा०) इत्यादि १ । २६ से भी आप के लिखे वचन युक्तिहीन होने से विरुद्ध हैं ।

५—आप का पक्ष यह प्रतिज्ञात हुआ था कि वेद और आर्ष ग्रन्थों से सिद्ध करेंगे परन्तु आप के लेख में वेद का कोई प्रमाण नहीं है। इस लिये भी आप का पक्ष शिथिल होता है। क्योंकि उस में वेद के प्रमाण अवश्य होने चाहिये थे।

६—प्रतिज्ञात पक्ष प्रतिपक्षों में यह भी लिखा था कि जीवतों का श्राद्ध नहीं होता। परन्तु आप के लिखे वचनों में कोई वचन जीवितश्राद्धनिषेधक नहीं है। इस लिये अपने पक्ष (साध्य) को सिद्ध न करने का दोष भी आप के लेख में आता है ॥ रामप्रसाद—प्रधान आर्य्यसमाज आगरा

इस का उत्तर पं० भीमसेन जी ने दिया कि—

नैषातर्केणमतिरापनेया—इतिकठे । तर्कोऽप्रतिष्ठइतिभारते । योऽवमन्येतते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः । स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः । इत्यादिवचनैरिदमायाति यत्र श्रुतौ स्मृतौ वा स्पष्टं प्रमाणं ततो विरुद्धं यस्तर्कं प्रयुङ्क्ते स नास्तिकः। वेदमन्त्रेभ्यो भवद्वचनानामेव विरोधः स्पष्टः। नास्ति श्राद्धे वैशेषिकग्रन्थकारस्य वैपरीत्यम्। न च पिण्डदानस्याबुद्धिपूर्वत्वं भवद्भिः प्रतिपादयितुं शक्यम्

युक्तिपदस्य कोऽर्थः । नात्र युक्तीनां विचारः प्रवृत्तः । अपितु वेदप्रमाणैरार्षग्रन्थप्रमाणैश्च भवद्भिः स्वपक्षः साध्यः । यदि प्रमाणैर्मृतश्राद्धं सिद्धं, तथा वक्तव्यं प्रमाणैः सिद्धमपि युक्तिविरुद्धत्वान्न मन्यत इति । अलीनांस्थापनेका युक्तिः समानमवोभयं युक्तिविरुद्धम्। स्मृतिवचनैः साद्धं वेदमन्त्राणामपि प्रमाणां सम्यक् संघटयिष्यते। भवद्भिः स्मृतिवचनानां वेदमन्त्रैर्विरोधो दर्शयितव्यः। जीवतां श्राद्धं न कथमपि प्राप्तं यदर्थं निषेधमन्त्रा निरूप्युः । प्राप्तौ सत्यां निषेधप्रवृत्तेः । मृतानां श्राद्धप्रतिपादकवचनैरागतमेव यज्जीवतां सेवनं न श्राद्धम् ॥

जीवितानां पित्रादीनां सेवनं श्राद्धं पितृयज्ञोवेति युष्माभिः प्रमाणमत्रांशे देयम्। जीवितश्राद्धपद्धतिः क्वापि केन ग्रन्थेनानुकूलाचेति लेख्यम् ॥ ह० भीमसेन शर्म्मा

अर्थ—कठोपनिषद् में लिखा है कि (नैषा तर्केण०) तर्क से यह मति प्राप्त होने योग्य नहीं है। भारत में लिखा है कि तर्क की प्रतिष्ठा नहीं है। (योवमन्येत०) इत्यादि वचनों से यह पाया जाता है कि जहां श्रुति वा स्मृति में स्पष्ट प्रमाण है उस से विरुद्ध जो तर्क का प्रयोग करता है वह नास्तिक है। वेदमन्त्रों से आप के वचनों का ही विरोध स्पष्ट है। श्राद्ध में वैशेषिकग्रन्थकार की विपरीतता नहीं है। आप पिण्डदान को अबुद्धि-

पूर्वत्व भी प्रतिपादित नहीं कर सके। युक्ति पद का क्या अर्थ है?। यहां युक्तियों का विचार प्रवृत्त नहीं है किन्तु वेद और आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों से आप को अपना पक्ष सिद्ध करना चाहिये। यदि प्रमाणों से मृतश्राद्ध सिद्ध होगया तो कहिये कि प्रमाणों से सिद्ध भी युक्तिविरुद्ध होने से नहीं माना जाता। बलियों के स्थापन में क्या युक्ति है? दोनों ही युक्तिविरुद्ध समान हैं। स्मृतिवचनों से वेदमन्त्रों का प्रमाण भी ठीक २ घटाया जायगा। आप स्मृतिवचनों का वेदमन्त्रों में विरोध दिखाइये। जीवतों का श्राद्ध किसी प्रकार भी प्राप्त न था जिस के लिये निषेधक वचन होते क्योंकि प्राप्त होने पर निषेध प्रवृत्त होता है। मृतों को श्राद्ध प्रतिपादन से ही यह अर्थापत्ति से पाया गया कि जीवतों का श्राद्ध नहीं है। आप को इस विषय में प्रमाण देना चाहिये कि जीवते पित्रादि की सेवा श्राद्ध वा पितृयज्ञ है। यह भी लिखिये कि जीवितश्राद्ध की पद्धति कहां है और किस ग्रन्थ के अनुकूल है॥ ह० भीमसेन शर्म्मा

इस के उत्तर में समाज का लेखः—

ओ३म्

१—नैषातर्केणेत्यादिकठवचनं ब्रह्मविद्यापरं, न कर्मकाण्डपरम्। भारतवचनस्याऽपितत्परत्वात् न तल्लेखःपर्याप्तः॥

२—योवमन्येतेत्यादिमनुवचनंच नतर्कनिन्दकं, किन्तुधर्मशास्त्रवचनपोषणाय तर्कानुसन्धानंकर्त्तव्यं नधर्मबोधकश्रुतिस्मृतिविघाताय,इत्येवसाधयति। तेषां वचनानांचाऽन्यार्षग्रन्थविरुद्धत्वात् नयथार्थस्मृतित्वम्। यस्तर्केणानुसंधत्ते इतिचास्माभिःपूर्वमेवालेखि। नचतदुत्तरंभवद्भिःकिमप्यदायि।

२॥-वेदमन्त्रेभ्योमनुवचनानामेवविरोधइत्यप्यऽपर्याप्तम्।विरोधस्याऽदर्शितत्वात्।

३—वैशेषिकग्रन्थकारस्यास्मदुद्धृतं यद्वचनं न तत्सङ्गतिः स्वपक्षपोषणाय भवद्भिः साधिता।

४—युक्तिपदस्यार्थःस्पष्टएव—युज्यतेसंभाव्यतेमायुक्तिः।नविघ्नोनेनकोभवतांलाभः।

५—श्रोतव्यःश्रुतिवाक्येभ्योमन्तव्यश्चोपपत्तिभिरित्यादिवचनैश्चतर्कस्यप्रतिष्ठासुस्पष्टा। "तर्कमृषिंप्रायच्छन्"—इतिनिरुक्तंच॥

६—साधितश्चपूर्वस्मिन्नेवलेखेऽस्माभिःस्वपक्षोवेदवचनैः । नापिभवद्भिरद्यावधि स्वपक्षपोषणायवेदवचनानिविन्यस्तानि । केवलंप्रतिज्ञातानि । नचप्रतिज्ञा मात्रेणसाध्यंसिध्यति ।।

७—बलीनांस्थापनेकायुक्तिरितिप्रकरणपरित्यागः ।

८—जीवतांश्राद्धंयदिनक्वापिविहितंनर्हिकिमर्थोलेखोनियमपत्रेव्यधायि । यत्रनिषेधप्रतिज्ञा स्पष्टाविद्यते ।।

९—जीवितपितृयज्ञप्रमाणानिलिखितानिपूर्वमस्माभिःपुनर्लेखस्याऽनावश्यकत्वम् । नचपद्धतिनिर्णयायैषशास्त्रार्थोऽपितुयाऽपिपद्धतिःस्यान्मृतपितृपरावा जीवितपरावेत्येवनिर्णेतव्यमस्ति । नाऽधिकायेतिदिक् ॥

अर्थ—कठोपनिषद् का वचन (एषा०) ब्रह्मविद्या के विषय में है, कर्मकाण्ड विषय में नहीं । (क्योंकि वहां मृत्यु और नचिकेता के संवाद में आत्मज्ञान में यह कहा गया है) भारत का वचन भी वैसा ही है । इस कारण इन का लिखना पर्याप्त नहीं ।।

२-(योवमन्येत०) इत्यादि मनुवचन तर्क की निन्दा नहीं करता किन्तु यह सिद्ध करता है कि धर्मशास्त्र के वचनों की पुष्टि में तर्क से अनुसन्धान करना चाहिये, धर्मबोधक श्रुतिस्मृति के विघात के लिये नहीं परन्तु आप के लिखे (मनुस्मृति के) वचनों को अन्य (सांख्यवैशेषिकादि) आर्षग्रन्थों के विरुद्ध होने से यथार्थ स्मृति पना नहीं है । "जो तर्क से अनुसंधान करता है वही धर्म को जानता है अन्य नहीं" यह(मनुवचन)हम पूर्व ही लिख आये हैं । जिस का उत्तर आपने कुछ भी नहीं दिया ।।

२।।—यह कह देना मात्र पर्याप्त (काफ़ी) नहीं है कि " वेदवचनों से आप के वचनों ही का विरोध है " क्योंकि (आप की ओर से) विरोध दिखलाया नहीं गया ।।

३—वैशेषिक ग्रन्थकार का जो वचन (पृ० १७ में) हमने लिखा था, उस की सङ्गति आपने अपने पक्षपोषणार्थ कुछ भी नहीं लगाई ।।

४—युक्तिमद् का अर्थ स्पष्ट है कि युक्त अर्थात् संभव हो । हम नहीं जानते कि इस (प्रश्न) से आप का क्या लाभ है ?

५—(श्रोतव्यः श्रुति०) इत्यादि वचनों से तर्क की प्रतिष्ठा भले प्रकार स्पष्ट है । (तर्कमृषिं०) इत्यादि निरुक्त भी (तर्क को ज्ञानोपदेशक ऋषि बताता है) ॥

६–हम अपना पक्ष पूर्व पत्र (पृ० १३) में ही वेदमन्त्रों से सिद्ध कर चुके हैं और आप ने अपने पक्ष की पुष्टि के लिये अब तक वेदवचन नहीं लिखे, केवल (लिखने की) प्रतिज्ञामात्र की है परन्तु प्रतिज्ञामात्र से साध्य की सिद्धि नहीं हो सकती ॥

७–" बलियों के स्थापन में क्या युक्ति है ?" यह प्रश्न प्रकरण का परित्याग करना रूप (दोष) है ॥

८–यदि जीवतों का श्राद्ध कहीं भी नहीं लिखा तो किस लिये आपने नियमपत्र (पृ० ११ पं० २४) में लेख किया था ? जहां निषेध की प्रतिज्ञा स्पष्ट है ॥

९–जीवित पितृयज्ञ के प्रमाण हम पूर्व (पृ० १३ में) लिख चुके हैं फिर लिखने की आवश्यकता नहीं। और यह शास्त्रार्थ पद्धति के निर्णयार्थ नहीं किन्तु जो कोई भी पद्धति हो वह जीवतों के विषय में हो वा मृतकों के विषय में, केवल इसी का निर्णय करना है। अधिक के लिये (शास्त्रार्थ) नहीं है ॥ रामप्रसाद–प्रधान आर्यसमाज

अब पं० भीमसेन जी के (पृ० १४–१५ में मुद्रित) लेख का उत्तर समाज ने दिया सो देखियेः–

ओ३म्

१–अस्मद्भिन्यस्तसर्वपक्षस्योत्तरंभवद्भिर्नोऽलेखि ॥

२–भवद्भिरुद्धृतानिमनुवचनानिअस्माभिः पूर्वंविन्यस्तैर्हेतुभिःपरस्परंविरोधमाप्नुवन्ति, अतःसाध्यसाधनाऽपर्याप्तानि । पितॄणांपरमेश्वरवद्व्यापकत्वंचविवादापन्नं नसिद्धम् । साध्यस्यसाधनत्वेनविन्यासोऽयुक्तएव ।

३–यावदऽसिद्धंपितॄणांपरमेश्वरवद्व्यापकत्वंनतावत्तेषांसार्वत्रिकीसत्तासमुल्लेख्या

४–व्यापकत्वंस्मोदेहंविहायलोकान्तरगमनंनसंभवति । भवदभिमतपितृलोकस्याऽस्मल्लोकतोभिन्नत्वे तत्रस्थपितॄणाव्यापकत्वाऽसंभवः ॥

५–आधत्तपितरइतिमन्त्रेपत्नीपिण्डयोर्नाभाऽपिनास्ति ॥

६–जीलिङ्गाआपःप्रार्थ्यन्तेइत्यपिभवदुक्तिरसमीचीना तत्रापां जडत्वात्प्रार्थनीयत्वाऽसंगतेश्च । व्यत्ययेनतत्राद्भिर्दुग्धादिभिश्चपितॄणांतर्पणस्यविहितत्वात् । नरपांप्रार्थना ॥

७–शतपथादिग्रन्थप्रमाणानामुद्धृतानिवचनानिचापिभवल्लेखे न सन्ति,नाऽपि तेषांसङ्केतः । अनुद्धृतेभ्यश्चवचनेभ्योनसाध्यंसिद्धिमेति ॥

८–वस्त्रस्थानेसूत्रपातनंचाऽपिअयुक्तं, वस्त्रस्यकार्यत्वंसूत्रस्यकारणत्वात् । नहि कारणंकार्यत्वेनविन्यसनीयम् ।

९–तत्रयदिजीवितशब्दोनविद्यतेतर्हिमृतशब्दोऽपिनास्ति । जीवतां संभावना च तत्रस्थैःपदैःसुस्पष्टा ॥

अर्थ–१–आपने हमारे समस्त पक्ष का उत्तर नहीं लिखा ॥

२–आप के लिखे मनुवचन हमारे पूर्वलिखित हेतुओं से विरोध को प्राप्त होते हैं इस लिये साध्य के साधन में पर्याप्त नहीं । परमेश्वरवत् पितरों का व्यापकत्व विवादास्पद है, न कि सिद्ध । साध्य को साधनरूप से लिखना अयुक्त ही है ॥

३–जब तक पितरों का परमेश्वरवत् व्यापकत्व असिद्ध है तब तक उन का सब जगह होना नहीं लिख सके ॥

४–व्यापक होने पर यहां से देह त्याग कर लोकान्तर को जाना नहीं बनता । आप का माना हुवा पितृलोक,हमारे लोक से भिन्न हो तो पितरों को व्यापक पना नही बन सक्ता ॥

५–(आधत्त पितरः०) इस मन्त्र में पत्नी और पिण्ड का नाम भी नहीं है ।

६–आप का यह कथन भी ठीक नहीं है कि स्त्रीलिङ्ग (आपः) जलों से प्रार्थना है। उस में जलों के जड़ होने से प्रार्थनीयता नहीं बनती । और व्यत्यय से यह विधान है कि जल और दुग्धादि से पितृजनों की तृप्ति की जावे, नकि जलों की प्रार्थना ॥

७–आप के लेख में शतपथादि ग्रन्थों के वचन भी उद्धृत नही हैं, न उन का पता ही है । जो वचन आपने उद्धृत ही नहीं किये उन से आप का पक्ष नहीं सिद्ध होसकता ॥

८–वस्त्र के स्थान में सूत डालना भी अयुक्त है क्योंकि वस्त्र कार्य है और सूत कारण । कार्य की जगह कारण लिखना उचित नहीं है ॥

९–उन (पृ० १३ के प्रमाणों=वेदमन्त्रों) में यदि जीवित शब्द नहीं है

तो मृत शब्द भी नहीं है । परन्तु जीवतों की संभावना वहां के पदों से भले प्रकार स्पष्ट है ॥ रामप्रसाद–प्रधान आर्यसमाज ॥

पं० भीमसेन जी ने निम्नलिखित उत्तर दिया–

ओ३म्

१–भवल्लिखितंपुनरुक्तंविहायाप्रासङ्गिकंचसर्वस्योत्तरंमयाऽलेखि ।

२–नास्तिभवद्धेतूनांप्रामाण्यमपितुवेदमन्त्रानुदाहृत्यतैर्विरोधंदर्शयन्तु । पितरोनव्याप्ताअपितुसूक्ष्माःपरोक्षाश्चातोगमनागमनंसम्भवति ॥

३–नमयापितॄणांसार्वत्रिकीसत्तोल्लिखिताऽतःप्रतिलेखोव्यर्थएव । ४–एवमेवव्यर्थंलेखनम् ।

५–आधत्तेति मध्यमंपिण्डंपत्नीप्राश्नातिपुत्रकामा । का० श्रौ० ४ ।१। २२ । इति कातीयश्रौतसूत्रम् । तत्रतनुवचनमपिमयापूर्वपत्रेलिखितम् । मन्त्रेपत्नीशब्दोनास्ति । परन्तुआर्षग्रन्थोक्तविनियोगादिनातदर्थःप्रतीयते। यथाचशन्नोदेवीरितिमन्त्रे–आचमनशब्दोनास्ति । तथापिशिष्टोक्तविनियोगाद्भवद्भिराचमनंप्रतीयते । एवमघमर्षणमार्जनादिष्वपिध्येयम् ।

६–ऊर्जं वहन्तीः–अत्रवहन्तीरितिबहुवचनस्त्रीलिङ्गपदेनयुष्माभिःकोऽर्थःक्रियते अपामभिमानिदेवतायास्तत्रप्रार्थनायुक्ता। अपांजडत्वेऽपिनदेवतायाजडत्वम्॥

७–ऊर्जंवहन्ती०–ऊर्जमित्यपोनिर्षिञ्चति । का० ४ । १ । १९ । इतिकातीयसूत्रप्रमाणात्पिण्डोपरिजलनिषेकेविनियोगः ।

८–वासःपदेनसूत्रस्यग्रहणमाच्छादनार्थत्वात्सम्भवति ।

९–मृतकर्मणि–आर्षग्रन्थकृतविनियोगान्मृताः प्रतीयन्ते जीविताः केन हेतुना प्रतीयेत ॥ ह० भीमसेन शर्म्मा

अर्थ–१–आप के लिखे पुनरुक्त और अप्रासङ्गिक को छोड़ कर मैंने सब का उत्तर लिख दिया है ।

२–आप के हेतुओं को प्रमाणता नहीं है किन्तु वेदमन्त्रों को उदाहृत करके उन से विरोध दिखलाइये । पितर व्याप्त नहीं हैं किन्तु सूक्ष्म और परोक्ष हैं इस से जाना आना हो सकता है ।

३–मैंने पितरों की सर्वत्र सत्ता नहीं लिखी इस से उस का उत्तर लिखना व्यर्थ ही है । ४–इसी प्रकार व्यर्थ लेख है ।

५–(आधत्तेति) कात्यायन श्रौ० ४ । १ ।२२ में पत्नी को मध्यमपिण्ड

खाना लिखा है और इस विषय का मनुवचन भी मैंने पूर्व पत्र में लिखा था। मन्त्र में पत्नी शब्द नहीं है परन्तु आर्षग्रन्थों में कहे विनियोगादि से उस का अर्थ प्रतीत होता है। जैसा कि शन्नोदेवी:० इस मन्त्र में आचमन शब्द नहीं है तथापि शिष्ट लोगों के कहे विनियोग से आप को आचमन प्रतीत होता है। ऐसा ही अघमर्षण मार्जनादि में भी जानिये ।।

६—(ऊर्जं वहन्तीः०) इस बहुवचन स्त्रीलिङ्ग पद से आप क्या अर्थ करते हैं। जलों के अभिमानी देवता की प्रार्थना वहां ठीक है। जल के जड़ होने पर भी देवता को जड़ता नहीं है।

७—"ऊर्जं वह० इस से जलसेचन करता है" कात्या० ४ । १ । १९ यह प्रमाण है। पिण्डों पर जलसेचन में विनियोग है।

८—वासस् शब्द से सूत्र का ग्रहण आच्छादनार्थ होने से बन सकता है।

९—मृतकर्म में आर्ष ग्रन्थों के विनियोग से मृतक प्रतीत होते हैं, जीवित किस हेतु से प्रतीत हो। ह० भीमसेन शर्मा

इस का उत्तर समाज ने दिया कि—

ओ३म्

१—नास्माभिः पुनरुक्तं किमप्यनेखि अप्रासङ्गिकं च। यद्यलेखितर्हि दर्शनीयः स लेखः।

२—नास्माभिः स्वकल्पिताः हेतवो विन्यस्ता अपितु सांख्यवैशेषिकाद्यार्षग्रन्थवचनानि स्पष्टमुद्धृतानि। नचार्षवचनपरित्यागे कोपिहेतुर्भवद्भिरुद्घाटितः ।।

३—कात्यायनवचनप्रामाण्ये सति किं श्रीमद्भिरिदं नालोच्यते—

वावकीर्णिनागर्दभेज्या १ । १ । १३

भूमौ पशुपुरोडाशश्रपणम् । १ । १ । १४

अप्स्ववदानहोमः १ । १ । १६ अवदानानां हृदयजिह्वाक्रोडादीनां होमोऽप्सु उदकेषु भवति नाग्नौ। वचनात्। इति तद्भाष्यम्। यद्धि (अग्निं दूतं पुरोदधे) इत्यादियजुर्वचनात् विरुध्यते। वेदेऽग्नेर्दूतत्वेन विहितत्वात् क्वचापि जलस्य देवदूतत्वेनैव विहितत्वम् ॥

४—शिश्नात् प्राशित्रावदानम् १ । १ । १७ इति गर्दभशिश्नेन प्राशित्रादिरचनरूपजघन्यकर्मणां विहितत्वेन विन्यासः ।। विंशतितमसूत्रभाष्ये च (कात्यायनः

[कर्मप्रदीपे २ । ९ । १७ । १८] नस्वेग्नावन्यहोमःस्यादिति श्लोकरचनाद्दृश्यते । अस्तिचश्लोकरचना सूत्ररचनाकालतोनवीनकालीना । कर्मप्रदीपोऽपि कात्यायनकृतइतिचतत्रदृश्यते ॥

नचवयंकालीयसूत्रकृतमध्यमपिण्डप्राशनविनियोगसंमानमपमानंवामृतपितृनिमित्तकपिण्डदानसाधनाऽसाधनपरंपश्यामः । अस्तुविनियोगःकोपिपरं नास्तिजीवितश्राद्धविघातकोमृतश्राद्धविधायकश्च। वहन्तीरित्यादीनिपदानिस्वधाविशेषणानि।देवतायाश्चेतनत्वेनावलसाध्ये,असतिचतत्रदेवतापदंनतल्लेखोयुक्तः।

अर्थ–१–हमने कुछ पुनरुक्त नहीं लिखा, न अप्रासंगिक। यदि लिखा है तो वह दिखाइये ।

२–हमने निजकल्पित हेतु (दलीलें) नहीं लिखे किन्तु सांख्य वैशेषिकादि के वचन स्पष्ट उद्धृत किये हैं । और (उन) आर्ष वचनों (सूत्रों) के परित्याग (न मानने) में आप ने कोई हेतु प्रकट नहीं किया है ।

३–यदि कात्यायन के वचन प्रामाणिक हों तो क्या आप इस को नहीं देखते हैं कि–

वावकीर्णिनो गर्दभेज्या १ । १ । १३ भूमौ पशुपुरोडाशश्रपणम् १ । १ । १४ अप्स्ववदानहोमः १ । १ । १६ अवदानानां हृदयजिव्हाक्रोडादीनां होमोऽप्सु उदकेषु भवति,नाग्नौ । वचनात् ॥

अर्थ–अथवा अवकीर्णी ब्रह्मचारी गधे से यज्ञ करे । १३ । भूमि में गधे के मांस का पुरोडाश पकावे । १४ । पानी में उस के हृदय जीभ पसली आदि का होम करे। अग्नि में नहीं। वचन से ।। यह उस का भाष्य है। जो कि–

अग्निं दूतं पुरोदधे०

इत्यादि यजुर्वेद (२२ । १७) के मन्त्र से विपरीत है । क्योंकि यहां वेद में अग्नि को देवदूत कहा है, और जल को कहीं देवदूत नहीं कहा ।

४–शिश्नात्प्राशित्रावदानम् १ । १ । ७

इस सूत्र में कहा है कि गधे के उपस्थेन्द्रिय से प्राशित्रावदान बनावे । ऐसे २ निन्दितकर्मों को विहितभाव से लिखा है ।। और २०वें सूत्र के भाष्य में कात्यायनकृत कर्मप्रदीप का २।९।१७।१८ (नस्वेग्नावन्यहोमः०) इत्यादि श्लोक लिखा है और श्लोकरचना का समय सूत्ररचना के समय से नवीन है। और कर्म-

प्रदीप को भी इस भाष्य में कात्यायनकृत लिखा देखा जाता है (इस से यह कात्यायनकृत ग्रन्थ नूतनग्रन्थ जानाजाता है) और इस कात्यायनसूत्र के किये (पत्नी पिण्डप्राशन करे) इस विनियोग के मानने न मानने को इस विषय का साधक वा बाधक भी नहीं देखते कि मरे हुवे पितरों के निमित्त पिण्डदान किया जावे। किन्तु विनियोग कुछ क्यों न हो,परन्तु वह जीवितश्राद्ध का बाधक वा मृतश्राद्ध का साधक नहीं है। " वहन्तीः " इत्यादि पद " स्वधा " के विशेषण हैं। देवता का चेतन होना भी प्रथम तो साध्य है (सिद्ध नहीं) तिस पर भी वहां देवता शब्द नहीं आया। अतः देवता का लिखना ठीक नहीं है॥

रामप्रसाद—प्रधान आर्यसमाज ॥

समाज के इस लेख का और पूर्व (पृ० २० । २१ में छपे) लेख का उत्तर पं० भीमसेन जी ने यह लिखा कि:—

ओ३म्

१—नैषा तर्केण०—इतिवचनंतर्केणबुद्धिश्चलतीतिज्ञापयितुम्। भारतवचनमपि धर्मपरम्। कर्मकाण्डंचसर्वंधर्ममूलमेवास्ति॥

२—योऽवमन्येतेतिपद्येहेतुशास्त्रवचनंतर्कशास्त्रपरम्। यस्तर्केणानुसंधत्ते—इत्यादिवचनानिवेदाद्यर्थस्यानुसन्धानार्थानि। ग्रन्थानुकूलोऽर्थःप्रत्येतव्यः। नतु प्रत्यक्षोऽर्थस्तर्केणनिराकरणीयइतियोवमन्येतेत्यादिनासूचितम्।

३—शतपथकातीयसूत्रादिभ्योभवत्कल्पनंवेदमन्त्रेषुविरुद्धंजीवतांश्राद्धमिति।

४—वैशेषिकवचनानांनकोऽपिश्राद्धेनसम्बन्धः।

५—श्रुत्यर्थोययारीत्यासम्यग्युक्तःप्रतीयतेसायुक्तिस्तुसर्वास्तिकाभिमतैवास्ति।

६—नहिपूर्वोक्तभवल्लिखितवेदवचनेषुजीवतांश्राद्धंभवति॥ जीवतांसेवाकार्यासैव श्राद्धपदवाच्येतिनकाप्यायातम्। तस्माद्युष्माभिर्नस्वपक्षःसमर्थितः।

७—जीवतां श्राद्धं भवत्पक्षोनास्माकं। यदि स्वपक्षोयुष्माभिर्नसाधयितुं शक्यते तर्हि निग्रहस्थानमायातम्॥

८—जीवितप्रमाणंनतत्रास्तिनजीवितशब्दस्तत्रविद्यते। कस्मिन्मन्त्रेजीवतां सेवनंश्राद्धमितिलिखितम्। तल्लेख्यम्॥

९—येअग्निष्वात्तायेअनग्निष्वात्तामध्येदिवःस्वधयामादयन्ते। य० १९। ६०।

यामग्निरेवदहन्त्स्वदयतितेपितरोऽग्निष्वात्ताः । शतपथ २ । ६ । १ । ७ ।

अन्यवेदेषुतएवअग्निदग्धपदेनोक्ता अतःसिद्धंमृतपितॄणांश्राद्धंपितृयज्ञोवा।

(द्वितीयं पत्रम्) ओ३म् ह० भीमसेन शर्म्मा

१—वैशेषिकसांख्यशास्त्रयोःप्रमाणान्यप्रासङ्गिकान्येवसन्ति नचतेषांप्रमाणानां श्राद्धपितृयज्ञाभ्यां * विशिष्टःसम्बन्धोदृश्यते ।।

२—परमेश्वरस्यव्यापकत्वादयोहेतवोभवत्सांख्यकल्पिताएवसन्ति ।

३—कात्यायनवचनानांवेदानुकूलतयाऽस्त्येवप्रामाण्यम् । नचगर्दभेज्यादयोवेदाद्विरुद्धाः । अपितुवेदानुकूलाएव । सम्प्रतितेषांसमयोऽधिकारित्वाभावान्नास्ति वेदःसार्वकालिकोऽस्ति । नचसर्ववेदोक्तंकर्मसर्वदाकर्त्तुं शक्यते । अग्नेर्दूतत्वमप्सुहोमेननैवविरुध्यते सामान्यविशेषन्यायेनद्वयोरेवसार्थकत्वात् । शिश्नात्प्राशित्रावदानमित्यलौकिकंभिन्नकालीनंच । कर्मप्रदीपग्रन्थोविशेषेण स्मार्त्तइदंचश्रौतं न तयोःसर्वांशेसाम्यम् । अर्वाचीनंयदिसर्वमप्रमाणंतर्हि मत्यार्थ*काशादीनामाधुनिकत्वादप्यप्रामाण्यमङ्गीकार्यम् । यस्यमन्त्रस्ययत्र विनियोगस्तादृशएवतदर्थोऽपिभवत्येवातोमृतपितृश्राद्धेनतस्यसम्बन्धः । स्वधापदंविशेष्यंकस्यवाचकं ? मन्त्रेकर्तृवाचकंपदंकिमस्ति । विशेष्यविशेषणयोःकिंलक्षणम् ? । ह० भीमसेन शर्मा

अर्थ—(नैषा तर्केण०) यह वचन यह जतलाने को है कि तर्क से बुद्धि चलती है । भारत का वचन भी धर्मविषयक है । और सब कर्मकाण्ड का मूल भी धर्म ही है ।।

२—(योवमन्येत०) इस श्लोक में हेतुशास्त्रकथन तर्कशास्त्रविषयक है । (यस्तर्केणानुसंधत्ते०) इत्यादि वचन वेदादि के अर्थ का अनुसंधान करने के लिये हैं । ग्रन्थानुकूल अर्थ समझना चाहिये न कि प्रत्यक्ष अर्थ का तर्क से खण्डन करना चाहिये । यह (योवमन्ये०) इत्यादि से सूचित है ।

३—शतपथ कातीयसूत्रादि से, आप की कल्पना जीवितों का श्राद्ध वेदमन्त्रों में विरुद्ध है ।।

४—वैशेषिकवचनों का श्राद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं ।।

५—वेदार्थ जिस रीति से ठीक युक्त समझा जाता है वह युक्ति तो सब आस्तिकों की मानी हुई ही है ।।

६—पूर्वोक्त वेदमन्त्रों में जो आपने लिखे हैं, जीवितों का श्राद्ध नहीं है ।

* अक्षरभ्रंशोद्विवचनं च चिन्त्यम्

जीवतों की सेवा करनी चाहिये वही श्राद्ध कहाती है ऐसा कहीं भी नहीं आया । इस से आपने अपना पक्ष सिद्ध नहीं किया ॥

७—जीवतों का श्राद्ध होता है, यह आप का पक्ष है । हमारा नहीं । यदि आप अपने पक्ष को सिद्ध नहीं कर सकते तो निग्रहस्थान आया ॥

८—जीवित का प्रमाण वहां नहीं है, न जीवित शब्द है । किस वेद-मन्त्र में जीवतों का लिखा है, उसे लिखिये ॥

९—(ये अग्निष्वात्ताः०) इत्यादि यजुः १९ । ६० (यानग्निरेवदहन्त्स्व-दयति०) इत्यादि शतपथ २।६।१।७ अन्य वेदों में उन्हीं को अग्निदग्ध पद से कहा है । अतः मृतश्राद्ध वा पितृयज्ञ सिद्ध हुवा ॥ ह० भीमसेन शर्म्मा

पृ० २५ में छपे आर्यसमाज के पत्र का उत्तर पं० भीमसेन जी ने नीचे लिखे अनुसार दिया था:—

अर्थ—वैशेषिक और सांख्यशास्त्र के प्रमाण अप्रासङ्गिक ही हैं। और उन का १ श्राद्ध २ पितृयज्ञ से विशेष सम्बन्ध नहीं दीखता ॥

२—परमेश्वर के व्यापकत्वादि हेतु आप के निज कल्पित ही हैं ॥

३—कात्यायन के वचनों की वेदानुकूल होने से प्रामाणिकता है ही । और गर्दभेज्यादि यज्ञ वेदविरुद्ध नहीं हैं किन्तु वेदानुकूल ही हैं । और समस्त वेदोक्त कर्म सब काल में नहीं किया जा सकता । अग्नि का दूतपना जलों में होम से विरुद्ध नहीं है क्योंकि सामान्य विशेषन्याय से दोनों सार्थक हैं । (गधे के) उपस्थेन्द्रिय से प्राशित्रावदान बनाना, यह अलौकिक और भिन्न काल के लिये है । कर्मप्रदीपग्रन्थ विशेष करके स्मार्त है, और यह श्रौत है, इन दोनों में सर्वांश में समता नहीं है । यदि नवीनग्रन्थ सब अप्रमाण हैं तो सत्यार्थप्रकाशादि को भी नवीन होने से अप्रमाणता स्वीकार कीजिये । जिस मन्त्र का जिस में विनियोग है वैसा ही उस का अर्थ भी होता है। इस से मृतपितृश्राद्ध से उस का सम्बन्ध है । स्वधापद विशेष्य किस का वाचक है । मन्त्र में कर्तृवाचक पद क्या है । विशेष्य विशेषण का क्या लक्षण है ? ह० भीमसेन शर्म्मा

उक्त दोनों पत्रों के समाज की ओर से क्रमपूर्वक ये उत्तर गये थेः—

ओ३म्

१—नैषातर्केणेत्यादिवचने (एषेतिपदं) प्रकरणगतब्रह्मविद्यापरंस्पष्टंनततो-ऽन्यत्कल्पनीयम् ॥

२–योऽवमन्यतेत्यादिमनुवचनंनास्मत्पक्षेविरुध्यते । यतोनवयंकेवलतर्कशास्त्राश्रयात्तन्निरादरंकुर्मोऽपितु तस्याऽवैदिकत्वात् । उक्तंच–यावेदबाह्याःस्मृतयो याश्चकाश्चकुदृष्टयः । सर्वास्तानिष्फलाःप्रेत्यतमोनिष्ठाहिताःस्मृताः । इति । यदाचदेवेषुमृतानांपिण्डदानादिनदृश्यते भवल्लिखितेषुमनुवचनेषु च दृश्यते तदातानिमनुवचनानिअवैदिकानीतिमन्वानावयं नतद्दोषभाजः ॥

३–अस्मिल्लिखितोऽर्थोनभवदुद्धृतब्राह्मणसूत्रादिभ्योऽपिविरुध्यते । अस्तिचे-द्विरोधोदर्शनीयः । यानिचवदयमाणानिकातीयसूत्राणिअस्मत्पक्षविरुद्धानि नतानिमन्त्रविनियोगंपिण्डदानादीदर्शयन्ति अतोनास्मत्पक्षेविरोधस्तैः ॥

४–वैशेषिकवचनैर्नास्माभिःश्राद्धपक्षःसाध्यत्वाऽसाध्यत्वंनीयनेऽपितुवैशेषिकादि-भिरभिमतेनार्षाम्नायेनभवत्पक्षविरोधोदर्श्यते ॥

५–असत्यपिजीवितशब्देगमनाऽऽगमनभाषणश्रवणादिव्यवहारदर्शनात् स्पष्टंजी-वितत्वम् ॥

६–येअग्निदग्धायेअनग्निदग्धाः। अथवा–येअग्निष्वात्तायेअनग्निष्वात्ताःइत्या-दीनिवेदवचनानि नभवदभिमतसूक्ष्मपरोक्षपितृपराणि,तेषांदाहादेरभावात्। किंचदेहाएवदह्यन्तेनवाऽग्निनादह्यन्ते । येपितरोस्मदादिपितृदेहाःअग्नि-नादग्धायेचकेनचित्कारणेन नदाहंप्राप्ताःतेद्विधःआकाशस्यमध्येसूक्ष्माणुभाव-परिणताः सन्तःस्वधयापितृनिमित्तदत्ताहुत्याऽन्नेनमादयन्तेमदऽवस्थां प्राप्नु-वन्ति । तेभ्यः तज्जीवेभ्यःस्वराड् परमात्मायमोवायुर्वा (एतामसुनीतिं) प्राणप्राप्तिं (यथावशम्) स्वाधीनभावेनतन्वंकल्पयातिसमर्थयति। नात्रपि-ण्डदानविधानमपितुदेहान्तरप्राप्तिरेषाभवदभिमतार्थेनैवप्रतिपादिता ॥

७–शतपथवचनंचापिएतदर्थपरमेव । नानेनाऽपिमृतपिण्डदानंसिध्यति ॥

८–मृतपितृयज्ञेफलादेशवाक्यंविधिवाक्यंचलेख्यम् । वाक्यंचवेदवाक्यंस्यात् ॥

(द्वितीयं पत्रम्) ओ३म्

१–वैशेषिकसांख्यवचनानांप्रासङ्गिकत्वंपूर्वपत्रेस्माभिरुदितम् ॥

२–गर्दभेज्यामूलंवेदेक्वास्ति । नास्तिचेत्स्पष्टाऽवैदिकता । अस्तुचभवदभिमतो गर्दभेज्यादिधर्मः । अग्नेर्देवदूतत्वंवेदविहितं परमपांदेवदूतत्वमपियदिवेद-विहितंतर्हिवेदमन्त्रावक्तव्याः । नास्मदादयआर्याइममऽहिंसादिधर्मविरुद्धं धर्मं (धर्माभासम्) धर्मत्वेनमन्यामहे । "अग्नेयंयज्ञमध्वरंविश्वतः" (ऋ० १।१।४) अत्रवेदमन्त्रेऽध्वरपदार्थेसायणेनाऽपिहिंसाराहित्यस्यप्रतिपादनं स्पष्टंकृतं ततश्चहिंसाविशिष्टागर्दभेज्यास्पष्टैववेदविरुद्धा ॥

३—सत्यार्थप्रकाशादयोनस्वतन्त्रग्रन्था अपितुस्मृतिप्रतिपादितस्यश्रुतिप्रसूतिप्रतिपादितस्यचधर्मस्यव्याख्यानभूताः । अतएवनैतेषांनूतनतयाकापिहानिः। स्वधापदंविशेष्यंजलवाचकमुदकवाचकंचनिघण्टुप्रोक्तम्।तदेवचकर्तृवाचकम्। व्यावर्त्तकत्वंविशेषणत्वं, व्यावर्त्यत्वंविशेष्यत्वम् । परंभगवन् नैतेनप्रकरणाऽसहायकेनवाक्यशतेनप्रश्नशतेनवाक्विंचिदपिहस्तगतंभविष्यति । प्रकरणमनुसरन्तु ॥

४—असंभवस्याऽपि वेदाऽर्थस्य यदिभवद्भिःप्रामाण्यंमन्यतेतर्हि—बुद्धिपूर्वावाक्प्रकृतिर्वेदे (वैशे० ६ । १ । १) इत्यतोविरुध्यते ॥

पृ० २६ । २७ में छपे पं० भीमसेन जी के पूर्व पत्र का उत्तर—

अर्थ—१—(नैषातर्केण०) इत्यादि वचन में (एषा) यह पद ब्रह्मविद्या का वाचक है जिस से ब्रह्मविद्या का प्रकरण स्पष्ट है । इस से अन्य कल्पना करनी नहीं चाहिये ॥

२—(योऽवमन्येत०) यह मनुवचन हमारे पक्ष से विरुद्ध नहीं पड़ता,क्योंकि हम केवल तर्कशास्त्र के ही आश्रय से (आप के लिखे मृतश्राद्धविषयक) श्लोकों का निरादर नहीं करते हैं किन्तु उस (मृतश्राद्ध विधि के, जो आपने मनु से प्रस्तुत की है) के वेदमूलक न होने से (हम निरादर करते हैं) । और कहा भी है कि—

याववेदबाह्याःस्मृतयो याश्चकाश्चकुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाःप्रेत्यतमोनिष्ठा हि ताःस्मृताः ॥

जब कि वेदों में मृतकों का पिण्डदानादि नहीं देखा जाता और आप के लिखे मनुवचनों में देखा जाता है तो वे मनुवचन अवैदिक हैं,तब उन को न मानने से हम पर वह (नास्तिकता का) दोष नहीं लगता ॥

३—बल्कि हमारा लिखा वेदमन्त्रार्थ आप के उद्धृत ब्राह्मण सूत्रादि से भी विरुद्ध नहीं है । यदि है तो विरोध दिखाइये । और जो आगे आप कात्यायनसूत्र (अनुमान) प्रस्तुत करेंगे, जो हमारे पक्ष के विरुद्ध भी हों तो वे सूत्र पिण्डदानादि में मन्त्र का विनियोग नहीं दिखलाते हैं । इस से उन के साथ हमारे साध्य (वेदार्थ) में विरोध नहीं (आवेगा) ।

४—वैशेषिकादि के वचनों से हमने श्राद्धपक्ष साध्य वा असाध्य नहीं बताया किन्तु वैशेषिकादि ऋषिपरिपाटीसे आपके पक्ष का विरोध दिखलाया है

५–जीवित शब्द न होने पर भी जाना आना बोलना सुनना आदि व्यवहार (वेद में) देखने से जीवता होना स्पष्ट है ॥

६–ये अग्निदग्धाः० इत्यादि अथवा–येऽग्निष्वात्ताः० इत्यादि वेदवचन आप के अभिमत सूक्ष्म परोक्ष पितरों के विषय में नहीं है क्योंकि वे (सूक्ष्म परोक्ष आप के माने हुवे पितर) दग्ध नहीं किये जाते । किन्तु देह ही अग्नि से फूंके जाते हैं वा नहीं फूंके जाने पाते । इस से उस का तात्पर्य यह है कि "जो (हमारे वा किसी के) पितृजनों के देह अग्नि से दग्ध किये गये वा जो (किसी कारण) दग्ध नहीं कर पाये गये वे देह आकाश में सूक्ष्म अणुभाव में बदले हुवे स्वधा=आहुति रूप अन्न से अच्छी अवस्था को प्राप्त होते (रोगादिकारक न रह कर सुधर जाते) हैं । उन के जीवों के लिये (स्वराट्) परमात्मा यम वा वायु स्वाधीनभाव से प्राणप्राप्ति और दूसरा देह प्राप्त कराता है ।" इस में पिण्डदान का विधान नहीं है किन्तु देहान्तरप्राप्ति है जो कि यह आप के माने हुवे (महीधरकृत) अर्थ से भी दिखलाई गई ॥

७–शतपथ का वचन भी इसी अर्थ में है, उस से भी मृतपिण्डदान सिद्ध नहीं होता ॥

८–मृतपितृयज्ञ में फलादेशवाक्य और विधिवाक्य लिखिये और वह वेद-वाक्य हो ॥ रामप्रसाद–प्रधान आर्य्यसमाज ॥

दूसरे पत्र के पृ० २८ में छपे भाषानुवाद का उत्तर यह हैः—

१–अर्थ–वैशेषिक और सांख्य के वचनों की प्रसंगानुकूलता हम पूर्व पत्र में कह चुके हैं ॥

२–गर्दभेज्या का मूल वेद में कहां है ? यदि नहीं है तो अवैदिक होना स्पष्ट है। आप चाहे गर्दभेज्यादि को धर्म माना करें । अग्नि का देवदूत होना (अग्निं दूतं० यजुः २२।१७) वेदविहित है । परन्तु यदि जलों का देवदूतत्व भी वेदविहित है तो वेदमन्त्र कहिये । हम आर्य लोग इस अहिंसादि धर्म के विरुद्ध धर्माभास को धर्म नहीं मानते ॥

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः (ऋ० १ । १ । ४)

इस वेदमन्त्र में "अध्वरम्" पद के अर्थ में सायणाचार्य ने भी यज्ञ को हिंसारहित होना स्पष्ट प्रतिपादित किया है । जिस से कि हिंसाविशिष्ट गर्दभेज्या स्पष्ट वेदविरुद्ध है ॥

३—सत्यार्थप्रकाशादि स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं हैं किन्तु श्रुति स्मृति आदि से प्रतिपादित धर्म के व्याख्यानरूप हैं। इस से उन के नूतन होने से कोई हानि नहीं। "स्वधा" पद विशेष्य है और जल का नाम है जो निघण्टु में कहा है और वही कर्त्तृवाचक है। व्यावर्त्तक को विशेषण और व्यावर्त्य को विशेष्य कहते हैं। परन्तु भगवन्! इस प्रकार के प्रकरण को सहायता न देने वाले वाक्यों वा प्रश्नों से कुछ हाथ न आवेगा, प्रकरण के साथ चलिये॥

४—यदि आप असंभव वेदार्थ को भी प्रमाण करते हैं तो—

बुद्धिपूर्वा वाक्प्रकृतिर्वेदे (वैशे० ६ । १ । १)

इस से विरुद्ध पड़ता है॥ रामप्रसाद—प्रधान आर्यसमाज॥

पं० भीमसेन जी ने समाज के दोनों पत्रों के क्रम से ये उत्तर दिये किः—

ओ३म्

१—नैषातर्केणेतिपदंविशेषतयाब्रह्मविद्याप्रकरणस्थमपिसामान्येनसर्वत्रैवसंघटते। यथा· दृष्टिपूतंन्यसेत्पादमितिसंन्यासप्रकरणोक्तमपिसर्वोपयोग्यर्थंभवति। एवमत्रापिबोद्धव्यम्॥

२—मृतपितृयज्ञस्यब्राह्मणश्रुतिवाक्यैःस्पष्टंसिद्धस्यभवद्भिरवमानंक्रियते। तोयोऽवमन्येतेतिमनुवचनानुकूलंभवतांपक्षोह्रासमापन्नएव। पितृयज्ञसाधकश्रुतीनांवेदानुकूलत्वंसिद्धमेव वेदव्याख्यात्वंचसाध्यकोटिस्थम्॥

३—ब्राह्मणसूत्रादिस्थपितृयज्ञविनियोगेनभवदर्थोविरुद्धएव। मध्यमपिण्डप्राशनमन्त्रार्थवत्॥

४—वैशेषिकवचनैर्नास्मत्पक्षेकोऽपिविरोधः॥

५—गमनागमनादिव्यवहारोमृतेष्वपिसम्भवति। जीवितकल्पनाचसर्वार्षप्रमाणविरुद्धा॥

६—आहुतिर्देवयज्ञोनतुपितृयज्ञः। मृतपित्रर्थमाहुतिस्तुभवद्भिःस्वीकृता तत्राहुतिफलं यदि तेभ्यः प्राप्नोतितदापिण्डदानपरिणामोऽपितेनैवप्रकारेणप्राप्स्यति॥ शरीरस्थायेपरमाणवोदह्यन्तेतएवपरिणताःपितृत्वमाप्नुवन्ति। मृतपिण्डदानार्थंयच्छतपथादिप्रमाणंतत्पोषकामन्त्रा मयोदाहृताः। नच तदर्थंब्राह्मणादिग्रन्थाभवदर्थानुकूलाअपितुमदर्थानुकूलाःस्पष्टाएव।

७—शतपथवचनेनमृतपितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्योदानंस्पष्टमेव॥

८—यदा च सर्वएवमृतपितृयज्ञप्रतिपादकोग्रन्थसमुदायोविद्यते तदा किमुच्यते

विधिवाक्यंलेख्यमिति। असावेतत्तइत्येवयजमानस्यपित्रे। शत० २।४।३।१९। इत्यादीनिवाक्यानिविधिपराणि । युष्माभिर्जीवितपितृयज्ञविधिवाक्यंयत इच्छन्तितलेख्यमेव ॥ ह० भीमसेनशर्मा

(द्वि० पत्रम्)

१—मृतश्राद्धखण्डनंजीवितश्राद्धमण्डनं भवतांपक्षोनतेनकोऽपिवैशेषिकादिवच-नानांसम्बन्धस्तस्मादप्रासङ्गिकम्* ।।

२—वेदेपाशुकंकर्मसर्वमेवगर्दभेज्यादिमूलं विहितादितरप्रसङ्गेसर्वएवहिंसानिषेधः

३—सत्यार्थप्रकाशादिषुगरीयानृलेखोमनोऽनुकूलस्तत्रभवतांनतस्यश्रुतिस्मृतिभ्यां कोऽपिसङ्गतिंदर्शयितुंशक्नुवन्ति। स्वधापदमुदकवाचकमयमेवार्थोमयापिपूर्वमुक्तः

४—नास्ति कोऽपिवेदार्थोऽसम्भवः । अपितुभवतांबुद्धावेवसर्वोऽसम्भवोऽस्ति । अतएव बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिरितिलेख्यमेव ।। ह० भीमसेनशर्मा

अथ पितृयज्ञप्रमाणानि

१—पितृयज्ञःस्वकालविधानादङ्गःस्यात् । तुल्यवत्प्रसंख्यानात् । प्रतिषेधे च दर्शनात् । यज्ञपरिभाषासूत्राणि । सू० ८३—८५ । अमावास्यायांपिण्डपितृ-यज्ञेनपितॄन्प्रीणातीतिचब्राह्मणम्। अमावास्यायामेवपितृयज्ञः किमर्थः किंभव-त्पक्षेजीवितपितृभ्योमासिमासिसकृदेवान्नजलादिकंदेयम् ।।

२—शतपथेयत्पिण्डदानंपिण्डपितृयज्ञप्रकरणउक्तंतत्कस्माद्वेदमन्त्राद्विरुद्धंसवेद-मन्त्रउदाहार्यः ।।

३—आश्वलायनगृह्यसूत्रेऽन्त्येष्टिकर्मानन्तरं यच्छ्राद्धानांपार्वणादीनांप्रतिपादनं तदप्रामाण्येकोहेतुः। तदुक्तमधुपर्कादिकर्मस्वीकारेचकिंवेदानुकूल्यमित्यालोच्य स्पष्टमुत्तरंसप्रमाणंददतुभवन्तइत्याशासे ।। ह० भीमसेनशर्मा

पृ० २९ व३०—३१ में मुद्रित आर्यसमाज के प्रथम पत्र का उत्तर—

१—अर्थ— (नैषा तर्केण) यह पद विशेषतया ब्रह्मविद्या के प्रकरण में कहा हुआ भी सामान्य से सब जगह ही घटता है। जैसे (दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्) यह संन्यासप्रकरण में कहा हुवा भी सब आश्रमियों के लिये हो जाता है। ऐसे ही यहां जानिये ॥

२—मृतपितृयज्ञ का, जो ब्राह्मणश्रुतिवाक्यों से सिद्ध है, आप अपमान करते हैं। अतः (योऽवमन्येत०) इस मनुवचन के अनुसार आप का पक्ष

* एकवचनम् चिन्त्यम्

गिरता ही है। और पितृयज्ञप्रतिपादक श्रुतियों की वेदानुकूलता सिद्ध ही है। और वेदविरुद्धता साध्य कोटि में है॥

३–ब्राह्मणसूत्रादिस्थ विनियोग से आप का अर्थ विरुद्ध ही है। मध्यम पिण्डप्राशनमन्त्रार्थ के तुल्य॥

४–वैशेषिक के वचनों से हमारे पक्ष में कोई विरोध नहीं॥

५–जाना आना आदि व्यवहार मृतों में भी होसक्ता है। और जीवित की कल्पना सब आर्ष प्रमाणों से विरुद्ध है॥

६–आहुति देवयज्ञ है, न कि पितृयज्ञ। मृत पितरों के अर्थ आहुति तो आप ने मान ही ली, वहां यदि उन को आहुति का फल पहुंचता है, तो पिण्डदान का फल भी उसी प्रकार से पहुंच जायगा। शरीर के जो परमाणु फूंके गये वे ही बदल कर पितर बन जाते हैं। मृतपिण्डदानार्थ जो शतपथादि का प्रमाण है उस के पोषक मन्त्र मैंने दिखला दिये। और उन के अर्थ में ब्राह्मणादि ग्रन्थ आप के अर्थ के अनुकूल नहीं किन्तु मेरे अर्थ के अनुकूल ही स्पष्ट हैं॥

७–शतपथ के वचन से अग्निष्वात्त मृत पितरों को देना स्पष्ट ही है॥

८–जब कि समस्त ही मृतपितृयज्ञ का प्रतिपादक ग्रन्थसमुदाय विद्यमान है तब यह क्या कहा जाता है कि विधिवाक्य लिखिये। (असावेतत्ते०) शत० २। ४। २। १९ इत्यादि विधिविषयक वाक्य हैं। आप जहां से चाहें जीवित पितृयज्ञ के विधिवाक्य लिखें॥ ह० भीमसेन शर्म्मा

पृ० २९। ३१ में मुद्रित आर्यसमाज के द्वि० पत्र का उत्तर–

१–मृतश्राद्धखण्डन और जीवितश्राद्धमण्डन आप का पक्ष है। उस से वैशेषिकादि के वचनों का कोई संबन्ध नहीं। इस से अप्रासङ्गिक है॥

२–वेद में सब ही पशुसम्बन्धी कर्म, गर्दभेज्यादि का मूल है। और हिंसा के निषेध, विहित (हिंसा) से अन्यत्र लगते हैं॥

३–सत्यार्थप्रकाशादिकों में बहुत सा लेख मनमाना है, आप में से कोईभी श्रुतिस्मृति के साथ उस की संगति नहीं लगा सकता। स्वधा पद जलवाचक है, यही अर्थ मैंने भी पूर्व कहा था॥

४–वेद का कोई भी अर्थ असंभव नहीं किन्तु आपकी बुद्धि में ही सब असंभव है। इसी लिये "बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिः" यह ठीक ही है॥ ह० भीमसेन शर्मा

अथ पितृयज्ञप्रमाणानि

पितृयज्ञः स्वकालविधानादनङ्गः स्यात् ।। तुल्यवत्प्रसंख्यानात् ।। प्रतिषेधे च दर्शनात् ।। यज्ञपरिभाषासूत्र ८३—८५ " अमावास्या में पिण्डपितृयज्ञ से पितरों को तृप्त करता है" यह ब्राह्मण है। अमावास्या ही में पितृयज्ञ किस कारण ? क्या आप के पक्ष में जीवित पितरों को मासमास में एक बार ही अन्नजलादि देना चाहिये ?

२—शतपथ में जो पिण्डदान पिण्डपितृयज्ञ के प्रकरण में कहा है वह किस वेदमन्त्र से विरुद्ध है । वह मन्त्र उदाहरण में दीजिये ।।

३—आश्वलायन गृह्यसूत्र में अन्त्येष्टि कर्म के पश्चात् जो पार्वणादि श्राद्धों का प्रतिपादन है, उस के प्रमाण न मानने में क्या हेतु है। और उस में कहे मधुपर्कादि को स्वीकार करने में क्या वेदानुकूलता है, यह विचार कर आप प्रमाण सहित स्पष्ट उत्तर दीजिये । यह आशा करता हूं ।। ह० भीमसेन शर्मा

समाज ने इन दोनों पत्रों के ये दो उत्तर दिये किः—

ओ३म्

१—वैशेषिकादिवचनानां पूर्वपत्रे भवद्भिरप्रासङ्गिकत्वमुक्तमिदानीं च प्रासङ्गिकत्वं स्वीकृत्य विरोधाऽभावो लिख्यतेऽतः परस्परविरोधोऽपि भवल्लेखे विद्यते ।।

२—दृष्टिपूतन्यसेत्पादमित्यस्याऽन्यत्र निषेधो नास्ति अतः सर्वत्र कस्मिंश्चिदंशे संघटनं युक्तम् । परं तर्काश्रयस्याऽन्यत्र प्रयुज्यमानत्वात्तेनैव तेन मास्य मस्याऽऽयाति ।

३—ब्राह्मणवाक्यानि वेदवाक्यानि वा कानि कानि सन्ति यैर्मृतपित्रादिभ्यो दानं पिण्डस्य सिद्ध्यति ? विन्यस्यमानानां वचनानां च व्यवस्था संगतिर्वा जीवितपक्षेऽस्माभिस्साध्यत एव ॥

३—ब्राह्मणोक्तविनियोगेन को स्मदर्थो विरुध्यते कथं च ।।

४—सूत्रग्रन्थविहितगर्दभेज्यादीनां वेदविरुद्धताऽस्माभिर्वेदवचनमुद्धृत्य स्पष्टं प्रतिपादितैव ।।

५—जीवितपक्षे यागमनागमनभावणश्रवणादिव्यवस्था सङ्गतिर्वोऽस्माभिः क्रियते सा ब्राह्मणवाक्यं नकेन विरुध्यते ?

६—आहुत्या मृतशरीराणां वायौ परिणतानां परिशोधोऽस्माभिर्लिखितः । न चात्रैषा विचारणा सौ पितृयज्ञो न वेति । देवयज्ञो वा ।।

७—मृतपित्रर्थमाहुतिरस्माभिर्मृतशरीरदाहपरोक्षा, मान्या । साचाऽग्निद्वारा वेदविहिता, न पिण्डद्वारा ।।

८—मृतशरीरपरमाणवएवपरिणताःपितृत्वमाप्नुवन्तीत्यत्रकिंमानम् ।तेनचभवतां कापक्षसिद्धिः । पक्षस्तुतदर्थं पिण्डदानविधानदर्शनम् । नहितेषांसत्तामात्र-साधनम् ॥

९—शतपथेऽग्निष्वात्तेभ्यःपिण्डदानंक्वास्ति ।

१०—असावेतत्तइत्यादितुजीवितपरमेव ॥

(द्वि० पत्रम्) ओ३म्

१—यदिचवैशेषिकादिवचनानांभवत्पक्षेणविरोधोनास्तितर्हिममग्रन्थाभावादि कथनंकिमर्थम् ॥

२—वेदेस्मृतौवाहिंसाविशिष्टोयज्ञोनशिष्टसंमतः । किन्तुसर्वकर्मस्वहिंसांहिधर्मात्मा मनुरब्रवीत् । धूर्तैःप्रकल्पितंह्येतन्नैतद्वेदेषुकल्पितम् ।। (भारतेशान्तिपर्वणि २६४ अध्याये) इतिभवदभिमतभारतीयशिष्टवचनेनैवस्पष्टमायाति, यद्धिं-सापरयज्ञादिकर्मविधिर्धूर्तकल्पितइति ।।

३—यदाचसत्यार्थप्रकाशादिग्रन्थोपरिशास्त्रार्थोभविष्यतिकदाचित्तदातद्विषय-कशास्त्रार्थे वक्ष्यामःकिमपि ।।

४—यदिचश्राद्धविषयंपरित्यज्यसत्यार्थप्रकाशादिग्रन्थप्रामाण्याऽप्रामाण्ययोःशा-स्त्रार्थं चिकीर्षेत्कोपितर्हि तदंशेविचारःप्रवृत्तोभविष्यति । इदानींतुउभय-पक्षाभिमतग्रन्थप्रमाणसिद्धविषयविचारःप्रवर्त्तते ।।

५—यदिकोऽपिवेदार्थोऽसंभवोनास्तितर्हिदयादिस्वामिलिखितवेदार्थेऽसंभवःकथं मन्यतेभवता। यदिचेन्मन्यतेतदाजीवितार्थपरंपितृयज्ञसाधकंतद्भाष्यमेवप्रमाण-मस्तु । नान्यार्थापेक्षाविद्यते ॥

६—पितृयज्ञपरिभाषासूत्राणिभवताविन्यस्तानि नमृतपितृयज्ञपराणिअपितुजी-वितपराणिसंभवन्ति नास्तितत्रमृतशब्दः ॥

७—अमावास्यायांयोहिपितृयज्ञःसतुविशिष्टः।नानेनपितृणांनित्यंसेवनंनिषिध्यते

८—शतपथोक्तंपिण्डदानंनमृतपरं किंचजीवितपरंततो नैवास्माभिर्वेदविरुद्धता तस्यदर्शनीया । अतेनास्माकंसिद्धान्तहानिः ॥

९—आश्वलायनादिप्रोक्तपार्वणादिश्राद्धस्यैवदशायांभवल्लिखितमनुवचनाना-मितिदिक् ॥ रामप्रसाद—प्रधान आ० स० आगरा

(पृ० ३२ व ३३ । ३४ में मुद्रित पं० भीमसेन जी के प्रथम पत्र का उत्तर—)

अर्थ—१—पूर्वपत्र (पृ० २८) में वैशेषिकादि के वचनों को आपने अप्रासङ्गिक कहा था, अब इस पत्र (पृ० ३४) में प्रासङ्गिक मान कर विरोध न होना लिखा है । इस कारण आप के लेख में परस्परविरोध भी है ॥

२–दृष्टिपूतं न्यसेत्० इस का अन्य आश्रमों में निषेध नहीं है। इस से अन्यत्र घटा लेना ठीक है। परन्तु तर्क का आश्रय (ब्रह्मविद्या को छोड़ कर) अन्यत्र (शास्त्रों में) काम में लाया गया है। इस कारण उस (दृष्टिपूतं०) की समता इस (नैषा तर्केण०) के साथ नहीं है ॥

३–वे ब्राह्मणवाक्य वा वेदवाक्य कौन से हैं? जिन से मृत पित्रादिकों के लिये पिण्ड का दान सिद्ध होता है। जो वचन आपने अब तक लिखे हैं उन की व्यवस्था वा सङ्गति तो हम जीवितपक्ष में ही लगा रहे हैं ॥

४–ब्राह्मणग्रन्थ में कहे विनियोग से हमारा कौन सा अर्थ विरुद्ध है और किस प्रकार विरुद्ध है?

५–सूत्रग्रन्थ में विधान की हुई गर्दभेज्या की वेदविरुद्धता हमने वेद-मन्त्र लिख कर (पृ० ३१ पं० २७ में) स्पष्ट दिखला दी है ॥

॥ ५–हमने जो जीवितपक्ष में जाने आने बोलने सुनने आदि की व्यवस्था वा सङ्गति की है वह किस ब्राह्मणवाक्य से विरुद्ध है?

६–हमने वायु में परिणत मृत शरीरों की शुद्धि आहुति से (पृ० ३१ पं० ३ में) लिखी थी, वहां यह विचार नहीं है कि वह पितृयज्ञ वा देवयज्ञ है वा नहीं ॥

७–मृतपित्रर्थ आहुति जो हमने लिखी है वह मृत शरीरों के दाहविषयक कही है। अन्य कोई नहीं। और वह वेद ने अग्निद्वारा कही है, न कि पिण्डद्वारा ॥

८–इस विषय में क्या प्रमाण है कि मृत शरीर के परमाणु ही परिणत हो कर पितर बन जाते हैं। और उस से आप के पक्ष की क्या सिद्धि है। पक्ष तो (आप का) यह है कि उन के लिये पिण्डदान दिखलाना, न कि उन का होना मात्र सिद्ध करना ॥

९–शतपथ में अग्निष्वात्तों के लिये पिण्डदान कहां है?

१०–"अत्रावेतत्=यह आप के लिये है" यह तो जीवितों के लिये ही (शतपथ में) कहा है ॥ रामप्रसाद–प्रधान आर्यसमाज

पृ० ३३। ३४ में छपे दूसरे पत्र का उत्तर–

आर्य–यदि वैशेषिकादि के वचनों का आप के पक्ष से विरोध नहीं है तो "उन का सम्बन्ध कुछ नहीं" इत्यादि कथन आपने (पृ० ३४) क्यों किया था?

२–वेद वा स्मृति में किसी शिष्ट ने हिंसाविशिष्ट यज्ञ नहीं माना। प्रत्युत–

सर्वकर्मस्वहिंसांहिधर्मात्मामनुरब्रवीत् ।
धूर्तैःप्रकल्पितंह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम् ।

(महाभारत शान्तिपर्व अ० २६४) इस आप के माननीय भारत के वचन से ही स्पष्ट पाया जाता है कि हिंसायुक्त यज्ञादिकर्मविधि धूर्तों ने कल्पित की है (मनु वा वेद में नहीं थी) ।।

३—यदि कभी सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों पर शास्त्रार्थ होगा तो उस विषय के शास्त्रार्थ में कुछ (उस विषय में) कहेंगे ।।

४—यदि श्राद्ध विषय को छोड़ कर सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों के प्रामाण्या-ऽप्रामाण्य पर कोई शास्त्रार्थ करना चाहेगा तो उस अंश पर विचार चलेगा। अभी तो उभयपक्षसम्मत ग्रन्थों के प्रमाण से सिद्ध विषय का विचार प्रवृत्त है।।

५—यदि कोई भी वेदार्थ असंभव नहीं है तो स्वामीदयानन्द सरस्वती जी लिखित वेदार्थ में आप असम्भव क्यों मानते हैं । यदि नहीं मानते तो जीवितार्थविषयक पितृयज्ञसाधक उन का भाष्य ही प्रमाण हो ।।

६—आप ने जो (पृ० ३४ में) पितृयज्ञविषयक परिभाषासूत्र लिखे हैं वे मृतपितृयज्ञपरक नहीं हैं । किन्तु वे जीवितपितृयज्ञपरक हैं । उन में मृत शब्द नहीं है ।

७—अमावास्या का पितृयज्ञ विशेष है । उस से नित्य पितृसेवा का निषेध नहीं आता ।।

८—शतपथोक्त पिण्डदान भी मृतविषयक नहीं किन्तु जीवितविषयक है। इस लिये हम को उस की वेदविरुद्धता नहीं दिखलानी है । उस से हमारी सिद्धान्तहानि नहीं है ।।

९—आश्वलायनादि के कहे पार्वणादि श्राद्ध की वही दशा है जो आप के लिखे मनुवचनों की है । यह संक्षेप है।। रामप्रसाद-प्रधान आर्यसमाज

इन पत्रों का पं० भीमसेन जी की ओर से उत्तर—

ओ३म्

१—वैशेषिका * वचनानामप्रासङ्गिकत्वमेवमयाप्रत्यपादि नप्रासङ्गिकत्वम् ।।

२—वस्त्रपूतंजलंपिबेदित्यस्यान्यत्रविधिर्नास्तितेनसामान्यतयासार्वत्रिकंवचोवि-शेषेणसंध्याविनां।तर्कोऽप्रतिष्ठइतिवचोधर्मविषयक * एव—अत्राज्ञानमपिधर्मे

* अक्षरभ्रंशः, लिङ्गस्याऽज्ञानं च चिन्त्यम् ।

एवास्ति ॥

३–सद्दाति–असावेतत्ते–इत्यादीनिब्राह्मणवाक्यानिपिण्डदानपराणि ॥

४–आधत्तपितरो० अत्रपितरो०–इत्यादिमन्त्रार्थोयथाविनियोगेनविरुध्यतेतथा मयात्र्युःप्रदर्शितःस्वव्याख्याने ॥

५–नकोपिवेदमन्त्रेणगर्दभेज्यायाविरोधस्तदंशेविवादोऽपिनार्थसाधकः ।

६–जीवितपक्षेगमनागमनादिव्यवस्थौदकविधिनाब्राह्मणोक्तपिण्डदानेनविरुध्यते तद्यथाजक्षुषेऽभिषिञ्चेदेवंतत् ।श० २ । ४ । २ । २३ । इत्यादिवाक्यैर्विरुद्धएव जीविताग्रहः ॥

७–परिशोधएवफलावाप्तिस्तदेवागतम् ॥

८–मृतपित्रर्थमाहुतिर्नदाहपरोक्षकालेवस्तुविद्यतएवनतदन्याभवितुमर्हति ॥

९–येअग्निदग्धाइत्यादिमन्त्राएवदग्धानांपितृत्वेमानम् । मृतपितृभ्यःश्राद्धदान- मितिपक्षसिद्धिःस्पष्टैव ॥

१०–अग्निष्वात्तामृताःपितरस्तेभ्यआहुतिदानस्वीकारेभवतांविकल्पोऽस्तिनवा।

११–असावेतत्तइतिकथंजीवितपरम् ॥ ह० भीमसेनशर्मा

(द्वि० पत्रम्)

१–वैशेषिकादिवचनानिनजीवितप्रतिपादकानिनच मृतश्राद्धनिषेधपराणिपुनर- नेनप्रकरणेनकःसम्बन्धः ॥

२–वेदविरुद्धंस्मृतिवचस्त्याज्यंनभारता * प्रमाणैर्वेदःखण्डयितुंशक्यः ॥

३–सत्यार्थप्रकाशादिवद्वैशेषिकवचनान्यपिभिन्नार्थपराणिनात्रप्रयोजयन्ति ॥

४–योवेदार्थोब्राह्मणसूत्रादिग्रन्थानुकूलःसएवसम्भवति स्वामिनोऽन्यस्यवानान्यः

५–पिण्डपितृयज्ञोजीवत्सुनकदापिसंघटतेऽपितुमृतेष्वेवसंघटतेनायंनियमोऽस्ति मृतशब्दमन्तरामृतार्थोनसम्भवतीति ॥

६–स्वपितॄणांनित्यसेवनस्यश्राद्धंनामास्तिनवा। अस्तिचेत्तस्यकोविधिःकिंचलेख- प्रमाणम् ॥

७–पिण्डपितृयज्ञेपितरोमनुष्येभ्योभिन्नाइतिशतपथलेखात्तेभ्यएवपिण्डदानं न जीवद्भ्योमनुष्येभ्यइति ॥

८–आश्वलायनमन्वादिवाक्यानिश्राद्धप्रतिपादकानिवेदानुकूलानिसन्त्येव । यो ब्रूयाद्वेदविरुद्धानीति स विरोधंदर्शयेत् ॥

---

* अक्षरभ्रंशश्चिन्त्यः

९—भवतांमतेनित्यश्राद्धंकिमस्तिकृत्तिलिखितंचलिखन्तु ॥ ह० भीमसेनशर्मा

पृ० ३७ में छपे समाज के पत्र का उत्तर—

अर्थ—१—वैशेषिकादि के वचनों की अप्रासङ्गिकता ही मैंने प्रतिपादन की थी। प्रासङ्गिकता नहीं ॥

२—(वस्त्रपूतं जलंपिबेत्०) इस का अन्यत्र विधान नहीं है। इस से सामान्य करके सर्वत्र के लिये जो वचन है वह विशेष करके संन्यासियों का। (तर्कोऽप्रतिष्ठः०) यह वचन धर्मविषयक ही है। ब्रह्मज्ञान भी धर्म ही है।

३—(सद्दाति—प्रभावेतत्ते) इत्यादिब्राह्मणवाक्यपिण्डदान के विषय में हैं।

४—(आधत्त पितरः०) इस में मन्त्र का अर्थ जिस प्रकार विनियोग से विरुद्ध है सो मैं कल अपने (मौखिक) व्याख्यान में दिखा चुका हूं।

५—गर्दभेज्या का मन्त्र में कोई विरोध नहीं। इस अंश में विवाद भी अर्थसाधक नहीं ॥

६—जीवितपक्ष में गमनआगमन आदि व्यवस्था ब्राह्मणोक्त उदकविधि से विरुद्ध है (तद्यथाजक्षुषेभिषिञ्चेदेवंतत्०) श० २। ४। २। २३ इत्यादि वाक्यों से जीवित का पक्षपात विरुद्ध है ॥

७—शुद्ध होना ही फलप्राप्ति है, वही आगया ॥

८—मृतपित्रर्थ आहुति दाहपरक नहीं कही,लेख तो विद्यमान है ही उस से अन्य नहीं होसकी ॥

९—येअग्निदग्धाः० इत्यादि मन्त्र ही दग्धों के पितृत्व में प्रमाण हैं। मृत पितरों के लिये श्राद्ध देना, यह स्पष्ट ही पक्ष की सिद्धि है ॥

१०—अग्निष्वात्त मृतपितरों के लिये आहुति देना स्वीकार करने में आप को विकल्प है वा नहीं ॥

११—प्रभावेतत्ते० यह जीवितपरक किस प्रकार है ॥ ह० भीमसेन शर्मा

पृ० ३७। ३८ में मुद्रित समाज के द्वितीय पत्र का उत्तर—

अर्थ—१—वैशेषिकादि के वचन न तो जीवितश्राद्ध के विधायक हैं, न मृतश्राद्ध के निषेधक हैं, फिर इस प्रकरण से क्या सम्बन्ध है ?

२—वेदविरुद्ध स्मृति त्याज्य है नकि भारत के प्रमाणों से वेद का खण्डन किया जा सकता है ॥

३—सत्यार्थप्रकाशादि के तुल्य वैशेषिक के वचन भी भिन्न अर्थविषयक हैं, इस में काम नहीं आते ॥

४-जो वेद का अर्थ ब्राह्मण सूत्रादि ग्रन्थों के अनुकूल है वही सम्भव है। अन्य स्वामी वा अन्य किसी का नहीं ॥

५-पिण्डपितृयज्ञ जीवतों में कभी नहीं घट सकता किन्तु मृतों में ही घटता है। यह नियम नहीं है कि "मृत" शब्द के बिना "मृत का अर्थ" नहीं लिया जा सके ॥

६-अपने पितरों की नित्य सेवा का नाम श्राद्ध है वा नहीं? यदि है तो उस की क्या विधि है और लेखप्रमाण क्या है?

७-शतपथ में पिण्डपितृयज्ञ में मनुष्यों से पितरों को भिन्न लिखा है। इस से उन्हीं के लिये पिण्डदान है, जीवते मनुष्यों के लिये नहीं॥

८-आश्वलायन मनुआदि के श्राद्धप्रतिपादक वचन वेदानुकूल ही हैं। जो वेदविरुद्ध बतावे वह विरोध दिखलावे ॥

९-आप के मत में नित्यश्राद्ध क्या है और कहां लिखा है, लिखिये ॥

ह० भीमसेन शर्मा

समाज ने दोनों के उत्तर ये दिये थेः-

ओ३म्

(पत्र सं० १ ता० २१ । २ । ०१)

१-वैशेषिकादिवचनानिनाऽप्रामाणिकानि। तत्र-अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः (वैशे०) यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। तद्वचनादाम्नायस्यप्रामाण्यम्। बुद्धि-पूर्वावाक्प्रकृतिर्वेदे। बुद्धिपूर्वोददातिः। इत्यादीनिसूत्राणिबहुशोधर्मसम्बन्ध-पराणि वेदसम्बन्धपराणिचसन्ति। तस्मान्नैतद्वक्तुंशक्यंयत्तानिशास्त्राणि विज्ञान-(फ़िलासफ़ी) पराण्येवेति ॥

२-सद्दातिप्रसावेतत्तेइत्यादिब्राह्मणवचनानिजीवतांशुश्रूषाभोजनादिदानप-रारयेव न मृतपराणि। मृतशब्दाऽदर्शनात् ॥

३-आयन्तपितरइत्यस्यसूत्रोक्तोविनियोगोऽमूलकः ॥

४-गर्दभेज्यायाहिंसादोषदुष्टत्वात्तद्धिंसायाश्चवेदविरुद्धत्वात्तगर्दभेज्यावेदविरुद्धैव। यथाचपूर्वदिवसेऽस्माभिःप्रदर्शितोवेदमन्त्रः (अग्नेयंयज्ञमध्वरम्०) इति। अन्यच्च-यःपौरुषेयेणक्रविषासमङ्क्तेयोअश्व्येनपशुनायातुधानः। योअघ्न्याया भरति क्षीरमग्नेतेषांशीर्षाणिहरसापिवृश्च (ऋ० १० । ८७ । १६) तदीयं सायणकृतभाष्यमपिचसाधयतियन्मांसभक्षणपराराक्षसाभवन्ति, निवारणी-

याश्वते इति। तथाचपशुहिंसायावर्ज्यत्वेसिद्धेगर्दभेज्यादिहिंसाविशिष्टा न धर्मा भवितुमर्हन्तिवेदविरुद्धत्वात् । ऊर्जंवहन्तीरित्यादिनाजीवितपक्षे नकोपि दोषः । यतस्तेजीवात्मनांपरलोकगतानांपितृत्वंप्राप्तानांपितृत्वात् तदर्थं एवपिण्डदानादिसाध्यसाधनस्यकर्त्तव्यत्वात् मृतदेहपरिणतविकृतरोगादिहे-तुभूताणुशोधनाभिप्रायदत्ताहुतिर्नभवद्भिमतपितृपरा । असावेतत्तेइतिहि वाक्यंजीवितपरंतथैवयोजनीयं यथाविवाहादौपाद्यंप्रतिगृह्यतामित्यादिव-चनानिविद्यमानवरायदीयमानजलादिपराणिसंगच्छन्ते ॥

आश्वलायनादयो न सर्वांशेप्रमाणीभूताः वेदविरुद्धांशेत्याज्यत्वात् ॥ आजमन्नाद्यकामः । २ । तैत्तिरंब्रह्मवर्चसकामः । ३ । (आश्व० १ । १६) इत्यादिषुवेदविरुद्धमांसभक्षणप्रतिपादनात् ॥

ओ३म्

(द्वितीयं पत्रम्)

१—वैशेषिकादिविषयेपूर्वपत्रेऽस्माभिर्लिखितंतत्पश्यन्तु । तेनास्माकंपक्षसिद्धि-र्भवत्खण्डनंचतेनायाति ॥

२—भारतप्रमाणेनवेदोनास्माभिःक्वापिखण्डितःपुनस्तथाभवल्लेखोव्यर्थएव। कि-न्तुहिंसाप्रतिपादकमनुवाक्यानांप्रक्षिप्तताऽस्माभिःप्रतिपादिता ॥

३—अस्योत्तरंप्रथमपङ्क्तिवत् ॥

४—विवादास्पदीभूतमन्त्रार्थैःशतपथब्राह्मणवचनैर्नास्माकंविरोधः । अस्तिचेद्द-र्शनीयः ॥

५—किमयंनियमोस्ति? यन्मृतशब्दमन्तरापिमृतार्थोगृह्येत? जीवितशब्दमन्तरा चजीवितार्थोनग्राह्यः? एवंचेन्महत्यव्यवस्थाऽऽपन्नाभविष्यति ॥

६—जीवतांश्रद्धापूर्वकंसेवनंश्राद्धंतच्चाऽस्माभिःपूर्वमेवमन्त्रैःप्रतिपादितं नचतत्रमृ-ताऽऽशङ्कापिसंभवति । श्राद्धशब्दस्तुवेदेनदृश्यते ॥

॥६—पितॄणांजीवतांमनुष्यपदवाच्यत्वेऽपिविशिष्टसंबन्धार्थद्योतकत्वे, भिन्नपदेन पितृव्यवहारोनतेषांमनुष्यत्वबाधकः । यथालोकेऽपिपुत्रःस्वपितरंमनुष्य-मेवजानन्नपिनमनुष्यपदेनसम्बोधयतिकिन्तुपितृशब्देनैव । एवमृषयोऽपि मनुष्याःसन्तोभिन्नेनर्षिशब्देनव्यवह्रियन्ते ॥

७—मनुवचनेषुश्राद्धप्रकरणेहिंसादृश्यते गोभिलीयेआश्वलायनसूत्रेचातोहिंसाया वेदविरुद्धत्वाच्छ्राद्धस्यवेदविरुद्धताऽऽयाता। यथा—मांसाभिमाराःपिण्डाभविष्य-

त्तीति (गोभि० ४।२।१३) एवं मनुस्मृतौ—द्वौमासौमत्स्यमांसेनेत्यादिद्रष्टव्यम् ॥
८—अस्मन्मतेनित्यश्राद्धंवेदविहितंपूर्वंप्रतिपादितमेवयजुर्मन्त्रैः ॥

प्रधान आर्यसमाज-आगरा

पृ० ४० में मुद्रित पं० भी० के पत्र का उत्तर—

अर्थ—१—वैशेषिकादि के वचन अप्रासङ्गिक नहीं हैं। उन में—

अथातोधर्मंव्याख्यास्यामः (वैशे० १।१।१) यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिःसधर्मः ॥ तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ॥ बुद्धिपूर्वावाक्प्रकृतिर्वेदे ॥ बुद्धिपूर्वोददातिः ॥

इत्यादि सूत्र बहुत हैं जो धर्म और वेद से सम्बन्ध रखते हैं। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वे केवल विज्ञान (फ़िलासफ़ी) के विषय में हैं ॥

२—(मद्दाति—असावेतत्ते) इत्यादि ब्राह्मणवचन—जीवितों की शुश्रूषा और भोजनादिदानविषय में ही हैं। मृत विषय में नहीं। क्योंकि वहां " मृत " शब्द नहीं दीखता ।

३—(आधत्त पितरः) इस का सूत्रोक्त विनियोग अमूलक है ॥

४—गर्दभेज्या के हिंसादोषयुक्त दुष्ट होने से और हिंसा के वेदविरुद्ध होने से गर्दभेज्या वेदविरुद्ध ही है। जैसा कि हम कल वेदमन्त्र दिखला चुके हैं कि (अग्ने यं यज्ञमध्वरम्० देखो पृ० ३१) ॥ और भी—

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः। यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥

(ऋ० १० । ८७ । १६) इस मन्त्र का सायणकृतभाष्य भी सिद्ध करता है कि मांसभक्षी राक्षस होते हैं और वे निवारण करने योग्य हैं ॥ जब इस प्रकार पशुहिंसा का वर्जनीय होना सिद्ध हुवा, तब वेदविरुद्ध होने से गर्दभेज्यादि हिंसाविशिष्टकर्म, धर्म नहीं हो सकते ॥

(अशुषेभिविञ्च त०=भोजन करने वाले को जल दे) इत्यादि (शतपथ०) से जीवित पक्ष में कोई दोष नहीं आता ॥ आप के पक्ष में परलोक को गये, हुवे पितृ बन चुके हुवे,जीवात्माओं का नाम पितृ होने से, और उन्हीं के निमित्त पिण्डदानादि साध्य (दावा=प्रतिज्ञा) को सिद्ध करना (आप का) कर्त्तव्य होने से, मृतक देह के परिणत विकारयुक्त रोगादि के हेतु अणुओं की शुद्धि के अभिप्राय से दी हुई आहुति आप के माने हुवे पितरों

के विषय में नहीं है ॥ (अमावेतस्ते०) इत्यादि वाक्य को जीवितपक्ष में उसी प्रकार समझना चाहिये, जिस प्रकार विवाहादि में वर को (प्रतिगृह्यताम्=लीजिये) कह कर विद्यमान वर के लिये दिये जाने वाले जलादि (पाद्य अर्घ्य आचमनीय मधुपर्क गोदानादि) के विषय में सङ्गत होते हैं॥

आश्वलायनादि सर्वांश में प्रमाण नहीं,क्योंकि वेदविरुद्धांश में त्याज्य हैं ॥

आजमन्नाद्यकामः ॥२॥ तैत्तिरं ब्रह्मवर्चसकामः ॥३॥

(आश्वलायन० १ । १६) इत्यादि सूत्र वेदविरुद्ध मांसभक्षण का प्रतिपादन करते हैं॥ रामप्रसाद—प्रधान आर्यसमाज

पृ० ४०–४१ में छपे पं० भी० जी के द्वितीय पत्र का उत्तर—

अर्थ—१—वैशेषिकादि के विषय में हम पूर्व पत्र (पृ० ४१ व ४३) में लिख चुके हैं उसे देखिये । उस से हमारे पक्ष की सिद्धि और आप के पक्ष का खण्डन आता है ॥

२—भारत के प्रमाण से हमने वेद का खण्डन कहीं नहीं किया, फिर (आप का) वैसा लिखना व्यर्थ ही है । किन्तु हमने हिंसा प्रतिपादक मनुवाक्यों की प्रक्षिप्तता दिखलाई थी (देखो पृ० ३८ पं० १ से) ॥

३—इस (वैशेषिक के वचन भिन्नार्थपरक हैं) का उत्तर संख्या १ के समान (जानिये) ॥

४—जिस मन्त्र के अर्थ पर विवाद है, उस का शतपथब्राह्मण हमारे विरुद्ध नहीं । यदि है तो विरोध दिखलाइये ॥

५-क्या यह नियम है कि "मृत" शब्द के विना भी "मृतक का अर्थ" लिया जावे और "जीवित" शब्द के विना "जीवितार्थ" न लिया जावे ? यदि ऐसा हो तो बड़ी भारी अव्यवस्था आवेगी ॥

६—जीवतों की श्रद्धापूर्वक सेवा श्राद्ध है । जो हमने प्रथम ही (पृ० १३ में) मन्त्रों से सिद्ध करदी है और उस में " मृत " की शङ्का तक भी नहीं बनती । परन्तु हां, श्राद्ध शब्द तो वेद में नहीं दीखता ॥

॥ ६—जीवितपितृजन यद्यपि मनुष्यपदवाच्य हैं, परन्तु तथापि विशेष सम्बन्ध (रिश्ते) का अर्थ जतलाने वाला होने पर, भिन्न पद से पितृजनों में व्यवहार होना, उन के मनुष्यत्व का बाधक नहीं । जैसे लोक में भी पुत्र अपने पिता को " मनुष्य " जानता हुवा भी " मनुष्य " शब्द से नही पु-

करता, किन्तु पिता शब्द से व्यवहार करता है। ऐसे ही ऋषि भी यद्यपि मनुष्य हैं, परन्तु भिन्न "ऋषि" शब्द से बोले जाते हैं ॥

७–मनु के श्राद्धप्रकरणस्थ वचनों में भी हिंसा देखी जाती है। और गोभिलीय तथा आश्वलायनसूत्र में भी। इस कारण हिंसा के वेदविरुद्ध होने से भी (आप के अभिमत) श्राद्ध को वेदविरुद्धता आई॥ जैसे कि–

मांसाभिघाराः पिण्डा भविष्यन्तीति (गोभि० ४। २। १३)

ऐसे ही मनुस्मृति में भी–

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन० (३। ६८)

इत्यादि को (हिंसापरायण) देखिये ॥

८–हमारे मत में जो नित्यश्राद्ध वेदविहित है सो पूर्व (पृ० १३ में) यजुर्वेद के (२। ३२–३४) मन्त्रों से सिद्ध कर आये हैं ॥

रामप्रसाद प्रधान आर्यसमाज–आगरा

पूर्व पत्र का उत्तर पं० भीमसेन जी की ओर से–

१–वैशेषिकादिवचांसिनश्राद्धंकर्मविदधतिनचप्रतिषेधन्ति। सन्तुसामान्येनधर्मपराणिविशेषतस्तुमीमांसादीनिकर्मकाण्डंसमर्थयन्ति।

२–मनुष्येभ्योभिन्नाःपितरस्तेषामेवशतपथंपितृयज्ञेनचजीवन्तोमनुष्यामनुष्येभ्योभिन्नाभवितुमर्हन्ति।

३–गर्दभेज्यादिकर्माणिभिन्नकालार्थान्यविषयावेदानुकूलानितथापूर्वमेवास्माभिरुक्तम्।

४–विनियोगोनास्त्यमूलकोऽपितुभवतांसर्वमेवकथममूलकमस्ति।

५–मांसभक्षिणोराक्षसाइतितुसर्वास्तिकसम्मतम्। तेननयज्ञोविरुध्यते नयज्ञेमांसभक्षणमुद्दिश्यतेनचभवदुदाहृतमन्त्राभ्यांतत्पाशुकंकर्मविरुध्यते।

६–तद्यथाजक्षुषेऽभिषिञ्चेदित्याकंमृतपरमेवपितरोमनुष्येभ्योभिन्नाइतिशतपथेदर्शनात्।

७–मृतदेहाणुशोधनायाहुतिरितिकिमत्रप्रमाणंकथमसमञ्जसंकल्प्यते।

८–मनुष्येतरत्वात्पितृणामनावेतत्त्वइत्यादिपदानिमृतपराणिसिद्धान्येव।

९–आश्वलायनादिवाक्यानियदिवेदविरुद्धानितर्हिकस्माद्वेदाद्विरुद्धानीतिदर्शयततोचेन्मौनमास्ताम्। स्मरन्तुप्रकरणान्तरकरणात्प्रतिज्ञासंन्यासदोषग्रस्ताभवन्तः। ह० भीमसेन शर्मा

पृ० ४३ में मुद्रित समाज के पत्र का उत्तर—

१—अर्थ—वैशेषिकादि के वचन न तो श्राद्ध को सिद्ध करते, न निषिद्ध करते हैं। सामान्य से धर्मविषयक हों, विशेषतः मीमांसादि कर्मकाण्ड का समर्थन करते हैं॥

२—मनुष्यों से पितर भिन्न हैं, उन्हीं का शतपथ में पितृयज्ञ है, और जीवते मनुष्य मनुष्यों से भिन्न नहीं होसके।

३—गर्दभेज्यादि कर्म यद्यपि अन्य समयों के लिये हैं, और जैसे वे वेदानुकूल हैं वैसा हमने पहले कह दिया है।

४—विनियोग अमूलक नहीं है किन्तु आप का ही सब कथन अमूलक है।

५—यह सब आस्तिक मानते हैं कि मांसभक्षी राक्षस कहाते हैं, उस से यज्ञ को विरुद्धता नहीं, यज्ञ का उद्देश मांसभक्षण नहीं और आप के उदाहृत दोनों मन्त्रों से वह पशुसम्बन्धी कर्म विरुद्ध नहीं है।

६—(तद्यथा अक्षु०) यह मृतपरक ही है। क्योंकि शतपथ में पितर मनुष्यों से भिन्न हैं, ऐसा देखा जाता है।

७—मृतदेह के अशुशोधनार्थ आहुति है इस में क्या प्रमाण है। क्यों बेढंगी कल्पना की जाती है।

८—मनुष्यों से पितरों के भिन्न होने से (अमावै०) इत्यादि वाक्य मृतपरक ही सिद्ध हैं।

९—आश्वलायन के वचन यदि वेदविरुद्ध हैं तो किस वेदमन्त्र से विरुद्ध हैं। यह दिखलाओ, नहीं तो चुप होजाओ। स्मरण करो कि प्रतिज्ञान्तर करने से प्रतिज्ञासंन्यास दोष में आप लोग फंस गये॥ ह० भीमसेन शर्म्मा

इस का उत्तर समाज ने दिया कि—

ओ३म्

१—मृतपितृभोजनसमर्थनंक्वापिलेखेभवद्भिरद्यावधिकृतम्। नापिमृतेषुवस्त्र-परिधानादिकंसमर्थितंक्वापिलेखे॥

२—मनुष्येभ्योभिन्नत्वव्यवस्थापितृणांकृतपूर्वास्माभिः॥

३—गर्दभेज्यादि (कर्माणि) किंकालार्थानि, यत्कालार्थानितस्मिन्कालेवेदाज्ञा-सकवा। आचक्षेत्तद्विरोधवारणायतस्समयेऽपिकोहेतुरासीत्॥

४—अस्माकंकिंकल्पनंमूलवेदविरुद्धंपितृयज्ञविषये?

५—यदिमांसभक्षिणोराक्षसा इतिस्वीकारे, अस्मल्लिखितमन्त्रद्वयप्रतिपादितमांस-भक्षणनिषेधस्वीकारे चपाशुकंकर्मकथंनविरुद्धम् ?

६—येदग्ध्यन्तेतेदेहाएवतएवचाग्निदग्धपदवाच्यास्तदर्थएवाहुतेर्विधानात्स्पष्टैव तैर्मन्त्रैरेवदेहदाहाहुतिः ।।

७—आश्वलायनमनुगोभिलादिवचस्सुश्राद्धप्रकरणोक्तंमांसंवेदाद्विरुध्यतेतस्मात्तदुक्तंश्राद्धंवेदविरुद्धमितिसिद्धम् ।नचतत्रप्रकरणान्तरगमनम्। यदिमृतशब्दानुपादानेऽपिमृताभिप्रायोगृह्यतेभवद्भिस्तदानिम्नाङ्कितस्थलेकथंनमृताऽभिप्रायोगृह्यते ? :—

१—मानोवधीःपितरंमोतमातरम् (य० १६ । १५)

२—मानस्तोकेतनयेमानआयुषिमानोगोषुमानोअश्वेषुरीरिषः। (य० १६। १६)

३—प्रियंमाकृणुदेवेषु० (अथर्व० १९ । ७ । ६२ । १) इत्यादिषुमृतानांपितॄणां मातॄणां,तोकानां,तनयानां,गवाम्,अश्वानां,देवानां,राज्ञांमकस्मान्नग्रहणम् ?।

४—सम्भवाऽसंभवयोः संभवेकार्यसंप्रत्ययःकर्त्तव्यइतस्मान्मृतपदानुपादानेजीवितार्थग्रहणंसुकरमेव ।।

अथ शूलगवः (आश्व० ४ । ९। १) इत्यादिषुतुगोहिंसापिभवदभिमताश्वलायनादिलिखितास्वीक्रियतेकिम् ? ह० प्रधान आर्यसमाज—आगरा

अर्थ—मृतपितरों के"बोलने"का समर्थन अभी तक आपने किसी लेख में भी नहीं किया है और न मुरदों में वस्त्रपहराने का समर्थन किसी लेख में किया है।।

२—मनुष्यों से पितरों के भिन्न होने की व्यवस्था हमने (पृ० ४४ पं० २६ से) कर दी है ।।

३—गर्दभेज्यादि कर्म किस काल के लिये हैं ? जिस काल के लिये हैं । उस काल में वेद थे या नहीं ? यदि थे तो उन वेदों से विरोध दूर करने का उस समय में भी क्या हेतु था ?

४—त्रिसुपर्ण विषय में हमारी कौनसी कल्पना मूलवेद के विरुद्ध है ?

५—यदि मांसभक्षियों का राक्षसत्व स्वीकृत है, और हमारे लिखे (पृ० ४३) दोनों मन्त्रों में प्रतिपादित मांसभक्षणनिषेध भी स्वीकृत है तो फिर पशु-सम्बन्धी कर्म विरुद्ध कैसे नहीं है ?

६—जो दग्ध कियेजाते हैं, वे देह हैं, और वेही अग्निदग्ध पद के अर्थ हैं, सो उनही की शुद्धि के लिये आहुति का विधान होने से, उन्हीं मन्त्रों से देहदाहाऽऽहुति स्पष्ट सिद्ध है ।।

७–आश्वलायन मनु गोभिलादि के वचनों में श्राद्धप्रकरणोक्त मांस वेद से विरुद्ध है, इस कारण भी उन का कहा श्राद्ध वेदविरुद्ध सिद्ध हुवा। और प्रकरणान्तर में जाना भी नहीं हुवा॥ यदि आप मृत शब्द के बिना भी मृतक का अर्थ लगाते हैं तो निम्नलिखित स्थलों में मृताऽभिप्राय क्यों नहीं ग्रहण करते?

१–मानोवधीः पितरम्० (यजुः० १६ । १५) २–मानस्तो के तनये मानआयुषिमानो गोषु मानो अश्वेषुरीरिषः। इत्यादि (य० १६ । १६) ३–प्रियंमाकृणुदेवेषु (अथर्व १९ ।७। ६२।१)

इत्यादि में मरे हुवे पितरों, माताओं, बच्चों, पुत्रों, गौवों, घोड़ों, देवों और राजाओं का ग्रहण किस कारण नहीं?

४–संभव असंभव में से संभव में कार्य मानना चाहिये, इस कारण मृत पद न होने पर जीवितार्थ ग्रहण करना सुगम ही है॥

अथ शूलगवः

(आश्व० ४। ९। १) इत्यादिकों में तो गोहिंसा भी आप के माने हुवे आश्वलायनादि में लिखी है सो क्या आप मानते हैं?

(रामप्रसाद) प्रधान आर्यसमाज--आगरा

पं० भीमसन जी ने पृ० ४४ में छपे पत्र का उत्तर दिया कि–

१–वैशेषिकादिविषयेमयापिस्पष्टमेवलिखितम्। येनयुष्माकंपक्षोनिगृहीतएव।

२–यद्यपिवेदेस्पष्टमेवपाशुकंकर्मास्तितेनास्त्येवविरोधः। असत्यपिप्रसङ्गत्यागे प्रतिज्ञाहानिदोषआयात्येवभवत्सु॥

३–अस्याऽप्युत्तरंप्रथमसंख्यावदेवास्ति॥

४–सूत्रग्रन्थस्यविनियोगपरित्यागेभवदन्तिकेकिंप्रमाणम्।नास्तिचेत्सएवविरोधः

५–मनुष्येतरस्वात्पितृणांमृतग्रहणंसुस्पष्टमेवतेनागतएवमृतनियमः॥

६–जीवतांश्राद्धविषयेयत्पूर्वंभवद्भिरुक्तंतत्तथैवखण्डितमपिमया। बहवोभवद्भिमताअपिशब्दावेदे न दृश्यन्ते तेनकिम्॥

७–मनुष्याद्भिन्नाः पितरोनसन्तिचेन्मनुष्यपदेनकिमर्थं न स्वीकृताभिन्नत्वेनप्रतिपादनेकोऽपिहेतुर्भवद्भिर्नोक्त एव तस्मात्पितॄणां भिन्नत्वेमृतश्राद्धंसिद्धमेव। नास्तिभवदन्तिकेप्रमाणंकिमपि॥

८—यदिभवत्कथनमात्रान्मन्वादिवचांसिवेदविरुद्धानितर्हिंमत्कथनात्सर्वंभवत्कथनंवेदविरुद्धमस्तु ।

९—पूर्वंभवद्भिःपिण्डपितृयज्ञमन्त्रादर्शितायत्करणममावास्यायांस्वीकृतमपि । नित्यश्राद्धप्रमाणं च भवत्सन्निधौनास्तीतिनिरस्तोभवत्पक्षइतिसावधानतयाप्रत्यगात्मनिविचारणीयमित्याशासे । ह० भीमसेन शर्मा

अर्थ—वैशेषिकादि के विषय में मैंने भी स्पष्ट ही लिखा है जिस से तुम्हारा पक्ष गिर ही गया है ॥

२—यजुर्वेद में स्पष्ट ही पशुकर्म है, उस से विरोध है ही । प्रसङ्ग न त्यागने पर भी आप में प्रतिज्ञाहानि दोष आता ही है ॥

३—इस का उत्तर प्रथम संख्या के तुल्य ही है ॥

४—सूत्रग्रन्थस्थ विनियोग के त्यागने में आप के समीप क्या प्रमाण है ? यदि नहीं है तो वही विरोध है ॥

५—पितर मनुष्यों से भिन्न हैं, इस से मृतों का ग्रहण स्पष्ट है ही, इस से मृत का नियम आ ही गया ॥

६—जीवतों के श्राद्धविषयमें जो आपने पूर्व कहा वह मैंने उसी प्रकार खण्डित भी किया । आपके अभिमत भी बहुतसे शब्द वेदमें नहीं दीखते, इससे क्या ।

७—यदि पितर मनुष्यों से भिन्न नहीं हैं तो मनुष्य पद से क्यों नहीं स्वीकार किये गये । भिन्नभाव से प्रतिपादन में आपने कोई हेतु नहीं कहा । इस से पितरों के भिन्नभाव में मृतश्राद्ध सिद्ध ही है । आप के पास कोई प्रमाण नहीं ॥

८—यदि आप के कथनमात्र से मनु आदि के वचन वेदविरुद्ध हैं तो मेरे कथन से आप का सब कथन वेदविरुद्ध हो ॥

९—प्रथम आपने पिण्डपितृयज्ञ के मन्त्र दिखलाये थे, जिस का करना अमावास्या में स्वीकार भी किया था । और नित्यश्राद्ध का प्रमाण आप के पास नहीं है, इस से आप का पक्ष गिर गया । यह सावधानता से अपने मन में विचार कीजियेगा, यह आशा करता हूं ॥ ह० भीमसेन शर्मा

इति ॥

वक्तव्य—

आज २१ । २ । ०१ को तीसरे दिन का लेखबद्ध शास्त्रार्थ यहीं तक हुवा था, जिस में समाज का पत्र पृ० ४६ पं० २३ से लेकर पृ० ४८ पं० १५ तक में छपा हुवा अन्तिम पत्र था, इस का उत्तर पं० भीमसेन जी की ओर से नहीं हुवा था और ता० २२ को शास्त्रार्थ होता तो पं० जी उत्तर देते । तथा पृ० ४८ पं० १६ से पृ० ४९ तक छपे हुवे पं० भीमसेन जी के अन्तिम पत्र का उत्तर समाज से भी ता० २२ को ही मिलता, क्योंकि २१ ता० को शास्त्रार्थ का समय पूर्ण होगया था । सायंकाल को नित्य नियम के अनुसार दोनों पक्षवालों ने अपने २ पक्ष प्रतिपक्षों को व्याख्यान द्वारा स्पष्ट किया, श्रोताओं ने तीनों दिन के व्याख्यानों से स्वयं शास्त्रार्थ का परिणाम समझ लिया होगा । हम पं० भीमसेन जी के समान अपने मुख से अपने विजय और पराये पराजय की दुन्दुभि बजाना उचित नहीं समझते क्योंकि वादी वा प्रतिवादी के कहने से जय पराजय नहीं हो सक्ता किन्तु मध्यस्थ के कहने से होता है तदनुसार इस शास्त्रार्थ में एक पुरुष मध्यस्थ न था किन्तु सर्वसाधारण ही मध्यस्थ थे, अतः इस लेखबद्ध के पढ़ने और व्याख्यानों के सुनने वालों को ही जय पराजय के निर्णय का अधिकार है जो सब जानलेंगे और श्रोताओं ने जान लिया ॥

ता० २१ को लिखे समाज के अन्तिमपत्र का उत्तर जो ता० २२ के शास्त्रार्थ में पं० भीमसेन जी को देना था, सो २२ को शास्त्रार्थ न किया किन्तु अपने स्थान से ही उत्तर लिखलाये और सायंकाल को समाज में देदिया । यद्यपि यह उत्तर नियमविरुद्ध स्थान से लिखकर लाया हुवा इस शास्त्रार्थ का अङ्ग नहीं है और समाज को लेना भी आवश्यक न था परन्तु समाज ने पं० भीमसेन जी के सन्तोषार्थ लेलिया जिस को नीचे प्रकाशित भी किये देते हैं । पाठक देखेंगे कि उस से हमारे प्रश्नों का उत्तर कहां तक सन्तोषदायक होता है । यह पत्र लेना आवश्यक इस लिये न था कि वास्तव में ता० २२ को नियमानुसार दोनों पक्ष वाले बैठते तब वहीं नियमानुसार इस को पं० भीमसेन जी लिखते और पृ० ४८ । ४९ में छपे उन के पत्र का उत्तर समाज भी उसी समय देता । परन्तु पं० भीमसेन जी ने शास्त्रार्थ तो उस दिन न किया किन्तु स्थान से उत्तर लिख कर इस लिये भेजदिया कि ऐसा करने से ता० २१ के अन्तिम पत्र और इस अपने स्थान पर से लिखे पत्र (इन दोनों पत्रों)

का उत्तर समाज की ओर से शून्य रहे तौ समाज निरुत्तर समझा जावे । परन्तु सत्याऽसत्य के निर्णयार्थी को ऐसा करना उचित नहीं । इन दो पत्रों से क्या फल निकलेगा जब कि ३ दिन तक शास्त्रार्थ हुवा और तभी कुछ मृतश्राद्ध के वेदोक्त प्रमाण न मिल सके ॥

ता० २२ की कथा सुनिये—९ बजे से शास्त्रार्थ का नियत समय था ९ ॥ बजे पं० भीमसेन जी शास्त्रार्थ के स्थान अनाथालय में आये और अन्य दिनों के समान मकान के भीतर पुस्तक भी न लाये, गाड़ी में ही छोड़ आये, जानों अपने घरसे ही आज शास्त्रार्थ का विचार त्याग आये हों । आकर कहा कि तुम्हारे सभापति कहां हैं । उत्तर दिया गया कि पण्डित लोग हैं ही, सभापति जी के न आने से कोई हानि नहीं । कल और परसों भी तौ सभापति जी नहीं आये थे, आप के शास्त्रार्थ में क्या विघ्न पड़ा ? हस्ताक्षर वे सब पर्चों पर करदेते हैं, आज भी करदेंगे । परन्तु वे न माने तब पं० कृपाराम जी पं० भीमसेन जी आदि कई पुरुष समाज के सभापति के स्थान पर गये । पं० भीमसेन जी से बार २ पूछा गया कि क्या विघ्न होजायगा, बताइये तौ सही । कुछ न बताया, तौ यह भी कहा गया कि आप जिस कारण से शास्त्रार्थ को रोकना ही उचित समझते हैं उसे लिख कर देदें, इसे भी स्वीकार न किया । अन्त में सभापति जी ने कह दिया कि आप हटते हैं तौ जाने दीजिये, विघ्न हम भी नहीं चाहते ॥

११ बजे पं० भीमसेन जी घर को लौटगये और दोपहर को ही १ छपा हुवा विज्ञापन धर्मसभा आगरा का निकला कि पं० भीमसेन जी मुहल्ला छिलीटूंट में व्याख्यान देंगे। इत्यादि जिस से पायागया कि ता० २१ की रात्रि में ही वे धर्मसभा में व्याख्यानादि का यह निश्चय कर चुके थे और उस समय में आर्यसमाजमन्दिर में शास्त्रार्थविषयक व्याख्यान नहीं देना पहले ही से मान लिया था । नहीं तौ ११ बजे जाकर थोड़ी ही देर में छपा छपाया विज्ञापन नहीं निकलता किन्तु बहुत जल्दी करते तौ सायंकाल तक छपता ॥

शास्त्रार्थ से बाह्य पं० भीमसेन जी का पत्र यह था:—

१—मृतपितृषुभाषणं सम्भवतिप्राणभाषणवत् । छान्दोग्यलेखेनयथाप्राणोभाषते तत्समाहिताः श्रृण्वन्तितद्वदत्रापिसमाहिताःश्रद्धालवएवपित्रुपदेशंश्रृण्वन्ति मृतेषुमूत्रपरिधानसेववासःपरिधानंप्रमाणसिद्धम् । नचप्रमाणसिद्धंप्रत्यक्षादिनाबाध्यते ।

२–मनुष्याएवपितरइत्यत्रनकिमपिप्रमाणंभवद्भिरुदीरितम् । नचभवत्कथनंप्रमाणार्हंसाध्यत्वात् ।

३–गर्दभेज्यादिकर्माण्यधिकारिकालार्थानि वेदाश्चामनू वेदानुकूलानि च तानि । परिहृतोमयाविरोधःपूर्वम् ।

४–मूलवेदेअग्निष्वात्तमृतादिपितृयज्ञपरमन्त्रस्थपदैःसएवार्थःसूच्यतेयोब्राह्मणसूत्रादिषुस्पष्टीकृतस्तस्मात्सर्वस्माद्भवत्कल्पनंविरुद्धमस्त्येव ।

५–पाशुकंकर्मधर्मोद्दिष्टं यज्ञान्तर्गतंनतत्रमांसभक्षणोद्देशः । यत्रमांसभक्षणोद्देशस्तद्राक्षसंकर्म ॥

६–पितृपदवाच्यादेहसम्बद्धाएव । दग्धाःपरमाणवोयोन्यन्तरेपितृरूपेणपरिणता भवन्ति तएवपितरोऽग्निदग्धाअग्निष्वात्ता वा ।

७–आश्वलायनादिमन्त्रेषुश्राद्धप्रकरणस्थंमांसंवेदानुकूलंनविरुद्धंवेदेमांसप्रतिपादनस्यदूरपरत्वात् । तच्चान्ययुगार्थमतोनदोषाय । भवत्कथनमेववेदविरुद्धं श्राद्धन्तुवेदानुकूलमेवास्ति । दुर्जनतोषन्यायेनस्वीकृतेऽपिमांसरहितंश्राद्धंकिमर्थंक्रियते ॥

८–मानोवधीरित्यादीनिवचांसिनपितृयज्ञप्रकरणस्थान्यतोनमृतपित्रादिपराणि

९–तत्रमृतजीवितयोर्मृतेष्वेवार्थःसम्भवति सम्भवः ।

१०–शूलगवादयोयज्ञावेदानुकूलाएवभिन्नकालीनाःकलिवर्ज्याःसंप्रत्यकर्त्तव्याएव ॥

ह० भीमसेन शर्मा

अर्थ–मृत पितरों में बोलना हो सकता है । जैसे प्राण का बोलना । छान्दोग्य के लेख से जैसे प्राण बोलता है उसे एकाग्रचित्त वाले सुनते हैं वैसे ही यहां भी समाहित श्रद्धालु ही पितरों का उपदेश सुनते हैं । मृतों में मूत पहरना ही वस्त्र पहरना प्रमाणसिद्ध है और प्रमाणसिद्ध को प्रत्यक्षादि हटा नहीं सकते ॥

२–मनुष्य ही पितर हैं, इस में आप ने कोई प्रमाण नहीं दिया । और साध्य होने से आप का कथन प्रमाण नहीं ॥

३–गर्दभेज्यादि कर्म अधिकारी लोगों के समय के लिये थे, वेद भी थे और वे कर्म वेदानुकूल भी थे, मैं विरोध का परिहार पूर्व कर चुका हूं ।

४–मूलवेद में अग्निष्वात्तमृतादि पितृयज्ञमन्त्रस्थ पदों से वही अर्थ सूचित होता है जो ब्राह्मण सूत्रादिकों में स्पष्ट किया गया है । इस सब से आप की कल्पना विरुद्ध है ही ॥

५–पशुवधसम्बन्धी कर्म का उद्देश धर्म है, जो यज्ञ के अन्तर्गत है, उस में मांसभक्षण उद्देश (मुख्य तात्पर्य) नहीं होता । जिस (पशुवध) में मांस खाना उद्देश हो वह राक्षस कर्म है ।

६–देहसम्बन्धी परमाणु जो पितृ हैं, वे ही दग्ध होकर दूसरी योनि में पितृ बनते हैं, वे ही पितर अग्निदग्ध वा अग्निष्वात्त हैं ।

७–श्राद्धप्रकरण में आश्वलायनादि सूत्रों में कहा मांस वेदानुकूल है, विरुद्ध नहीं, क्योंकि वेद में मांस का प्रतिपादन देखा जाता है । और वह अन्य युग के लिये है, इस लिये दोष नहीं । आप का कथन ही वेदविरुद्ध है, श्राद्ध तो वेदानुकूल ही है । दुर्जनतोष न्याय से स्वीकार भी किया जाय तो मांसरहित श्राद्ध को क्या मानियेगा ॥

८–" मानोवधी०: " इत्यादि वचन पितृयज्ञप्रकरण के नहीं हैं । इस से वहां मृत अर्थ नहीं लिया जाता ।

९–मरों और जीवतों में से मरों में ही सम्भव अर्थ है ।

१०–"शूलगवादि" (गोहिंसायुक्त) यज्ञ भी वेदानुकूल हैं परन्तु अन्य काल के लिये हैं, कलियुग में वर्जित हैं, आज कल करने नहीं चाहियें ॥

ह० भीमसेन शर्मा

धन्य हो ! अब भेद खुला कि आप तो श्राद्ध क्या, सभी पौराणिक और तान्त्रिक लीला को मानते हैं ॥

१–वैशेषिकादि के वचनों का आपने अपने पक्ष में क्या अविरोध किया जब कि वे शास्त्र धर्मविषयक होने से न तो अप्रासङ्गिक हैं, न उन में कहे युक्ति और तर्क तथा बुद्धिपूर्वकत्व को ही आपने माना है, अलौकिक अर्थ कह कर टाल दिया है ॥

२–यजुर्वेद का वह पशुवध कर्म किसी मन्त्र से दिखलाया होता तो उस पर विचार किया जाता ।

३–सूत्रग्रन्थ के विनियोग का मूल से सम्बन्ध ही नहीं, सूत्र कहता है कि पिण्डों पर तागा चढ़ाओ, वेदमन्त्र कहता है कि " पितरो ! यह वस्त्र पहनिये " यह विनियोग ऐसा है, जैसा कि " शन्नोदेवी:० " इस मन्त्र के पदों (आपो भवन्तु पीतये)"जल होवें पीने के लिये"से आचमन में विनियोग तो सार्थक है परन्तु इस को अटकल पच्चू शनैश्चर का मन्त्र बताना ऊटपटांग

है। ऐसे ही " पत्नी मध्यम पिण्ड खावे " यह भी मूलमन्त्र से विरुद्ध है।

४—पिता को मनुष्य नाम से कोई व्यवहार नहीं करता सो आदरार्थ है, न कि पिता मनुष्य नहीं है। इसी प्रकार पितृयज्ञ मनुष्ययज्ञ के अन्तर्गत नहीं मानना आदरार्थ है। न कि पितर मनुष्यों से भिन्न हैं।

५—मनुस्मृति के मृतश्राद्ध को हम अपने कथनमात्र से अवैदिक नहीं बताते किन्तु आप उस का मूल वेद में नहीं दिखला सकते इस से अवैदिक ही रहा।

६—जो मन्त्र हमने पृ० १३ में नित्य पितृसेवा के दिखलाये थे, उन मन्त्रों का ब्राह्मण कहता है कि अमावास्या के नैमित्तिक पितृयज्ञ में उन मन्त्रों को अमुक २ अन्न जलादि देने के कार्य में पढ़ना होता है। इस से यह नहीं आया कि उन मन्त्रों का अर्थ यही है कि अमावास्या के ही दिन पितृजनों की श्रद्धापूर्वक सेवा की जावे। जिस प्रकार विवाह में (सह रेतो दधावहै= साथ वीर्य को रक्खें हम दोनों) इत्यादि मन्त्र का विनियोग विवाह संस्कार में होने पर भी यह तात्पर्य मन्त्र का नहीं है कि इसे विवाह में ही पढ़ दो, किन्तु स्त्री पुरुष के सदा के व्यवहार का भी वर्णन है। इसी प्रकार इन मन्त्रों का ब्राह्मणानुसार अमावास्या के पितृयज्ञ (विशेष कार्य) में विनियोग होने पर भी नित्य पितृसेवा का अर्थ दूर नहीं होता। इस से सिद्ध हुआ कि पृ० १३ में छपे हमारे दिये मूल मन्त्र प्रमाणों से नित्य पितृजनों का सत्कार विहित है। और ब्राह्मणानुसार विद्यमान पिता आदि को देवयज्ञ (अग्निष्टोमादि) के अन्तर्गत पितृयज्ञ में इस प्रकार मन्त्रविनियोगपूर्वक सत्कार विहित है कि (अक्षुपेभिषिञ्चत्) "शतपथे" भोजन से पूर्व जल से हस्त पादादि धुलावे। (असावेतत्ते) इस वाक्य को कह कर कि " आप के लिये यह भोजन है " भोजन दे। भोजन कर चुकने पर फिर जल से प्रत्यवनेजन=कुल्ला आदि को जल दे। इस सब ब्राह्मण में भी मृतकों को देना नहीं लिखा।

७—छान्दोग्य का वह पाठ आप ने प्रमाण में नहीं दिया जिस से प्राण के भाषण के तुल्य मृत सूक्ष्म परोक्ष=आंख आदि इन्द्रियों से न जानने योग्य आप के माने हुवे पितरों का बोलना सिद्ध होता। वर्णोच्चारण शिक्षा मात्र पढ़े लोग भी जानते हैं कि—

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनोयुङ्क्ते विवक्षया

इत्यादि का तात्पर्य यही होसक्ता है कि बोलने से वक्ता का तात्पर्य श्रोता को समझाने का होता है। फिर आप के अभिमत सूक्ष्म पितर जब अन्य लोक और अन्य योनि के सूक्ष्म देहधारी अतीन्द्रिय हैं तो उन की भाषा मनुष्य की भाषा न होने से मनुष्य समझ नहीं सक्ता, फिर बोलना व्यर्थ हुआ। इस लिये वेद में सूत शब्द न होने पर भी जो आप ने सूत की कल्पना की सो आप की कल्पना वेद पर व्यर्थता का दोष लगाने वाली होने से भी वैशेषिकादि के ऋषिवचनों से विरुद्ध हुई। जिस के सुनने में जो असमर्थ है वह श्रद्धालु होने पर भी नहीं सुन सकता। सूत्रकार ने मन्त्र के "वस्त्र" को छोड़ कर सूत के तागे (धागे) को यदि इस लिये माना हो कि पितर सूक्ष्म हैं उन को हलका वस्त्र चाहिये तो सूत का डोरा कितना ही हलका होने पर भी अतीन्द्रिय सूक्ष्म पितरों से तो भारी ही रहेगा। अतः पितर उस से दब मरेंगे। और पिण्ड भी इतना बड़ा २ गोला न खा सकेंगे किन्तु एक पिण्ड से सहस्रों पितर दब कर चकनाचूर होजायंगे। और वस्त्र पितरों को पहनाना चाहिये न कि पिण्डों को ॥

८—गर्दभेज्या में गधा मारना वा शूलगव में गोवध करना वेद के किसी मन्त्र से विहित नहीं, न आपने कोई मन्त्र लिखा। कलियुग में वर्जित होना आदि भी आपने अन्यस्मृति वा पुराणों से लिया होगा। उन २ ग्रन्थों में तो कालभेद नहीं लिखा कि यह अमुक युग का धर्म है। और हमने जो (अग्ने यं यज्ञमध्वरम्०) इत्यादि दो मन्त्र लिख कर मांसभक्षण और यज्ञ में भी हिंसा न करना दिखलाया था, उस का आप के पास कोई उत्तर नहीं। अतः हिंसाशिविष्ट श्राद्ध वा अन्य यज्ञ वेदविरुद्ध सिद्ध हैं। मृतपितृयज्ञ के पिण्डदान का वेद वा शतपथ में प्रमाण न मिलने से आप का पक्ष सिद्ध नहीं हुवा। और कात्यायन आश्वलायन तथा मनु के वे २ वचन अवैदिक होने से माननीय नहीं ॥

९—आप का पशुकर्म यदि धर्मोद्दिष्ट है तो क्या उस में हुई वेदविरुद्ध हिंसा अधर्म होने से धर्मोद्देश का नाश करके अधर्म की प्रचारक नहीं हुई ?

१०—यह लिखना कैसा मनमाना है कि मृतक के शरीर के ही परमाणु दूसरी योनि में पितृशरीर बनजाते हैं। किञ्चित् सनातनधर्मी भी इस पर ध्यान देंगे। यदि यही परमाणु पितृयोनि का देह बनावें तो दशगात्र का

पिण्डदान आपके मत से विरुद्ध होगा। तथा यही स्थूलदेह पितरों के लाखों देहों को परमाणु देने योग्य है, फिर १ स्थूलदेह को फूकने से अनेक पितृशरीरों के लिये अनेक जीव भी मानने पड़ेंगे। तथा भस्मादिरूप से अनेक परमाणुसमुदाय पृथिवी पर भी पड़े वा गड़े रहते हैं, उन के परिणाम से अन्यलोकस्थ पितर नहीं बनते ॥

इस शास्त्रार्थ में पं० भीमसेन जी ने वेदमन्त्र का केवल १ प्रमाण दिया था (येअग्निदग्धाः०) इत्यादि। जिस में देह को जलाने वा न जलाने पर भी दूसरा जन्म होनेमात्र का वर्णन है। पिण्डों का वहां नाम भी नहीं ॥

(२) शतपथ के सब प्रमाण मृतकशब्द से रहित हैं। वे विद्यमान पिता आदि को भोजनादि देने का प्रतिपादन करते हैं ॥

(३) सब मनुस्मृति के दो श्लोकों से अतिरिक्त आद्योपान्त पढ़ जाइये कोई प्रमाण मृतश्राद्ध का समर्थक नहीं मिलेगा। मनुवचन वेदमूलक न होने से माननीय नहीं। न मनु से मृतश्राद्ध पर विचार करने को यह शास्त्रार्थ हुवा था। किन्तु श्रोताओं को तो यह आशा थी कि इतने दिन तक आर्यसमाज के मुख्य पण्डित बने रहने और श्राद्धविषय पर मति परिवर्त्तन होने के कारणभूत यत्न के दीर्घकालीन विचार करने वाले पं० भीमसेन शर्मा जी अवश्य कोई अनूठे वेदमन्त्रों के प्रमाण देंगे। सो आशा निराशा होगई ॥

आर्यसमाज ने अपने पक्ष में-

५ वेदमन्त्र पृष्ठ १२ व १३ में,

१ मनुवचन पृ० १७ में,

२ वैशेषिकसूत्र पृ० १७ में,

२ सांख्यसूत्र पृ० १७ में,

१ निरुक्त० पृ० १८ में,

४ कात्यायनसूत्र परपक्षखण्डनार्थ पृ० २५ में,

१ वेदमन्त्र (अग्निं दूतं पु०) पृ० २५ में,

१ मनुवचन पृ० ३० में,

१ वेदमन्त्र पृ० ३१ में परपक्षोक्त हिंसा के खण्डन में,

१ महाभारत का प्रमाण पृ० ३८ में हिंसा की प्रक्षिप्तता में,

३ वैशेषिकसूत्र पृ० ४३ में,

१ वेदमन्त्र पृ० ४३ में मांसभक्षणनिषेध में,

२ आश्वलायन के २ सूत्र पृ० ४४ में,

१ गोभिलवचन पृ० ४५ में,

१ मनुस्मृति का श्लोक पृ० ४५ में,

२ यजुर्वेदमन्त्र और

१ अथर्ववेद का मन्त्र और

१ आश्वलायन का सूत्र पृ० ४८ में; ये सब ३१ वचन स्वपक्षमण्डन वा पर-

३१ पक्षखण्डन में दिये थे। पाठकलोग पढ़कर स्वयं परिणाम निकाल लेवेंगे ।।

सस्ते पुस्तक।

सामवेदभाष्य का पूर्वार्ध समाप्त हो गया। कमीशन छोड़कर डाकसहित ४)

मनुस्मृतिभाषानुवाद १।।) सजिल्द १।।।) सुनहरी छापा ५)

श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य दर्शनीयभाष्य है अबतक संस्कृत और भाषा में ऐसा भाष्य दूसरा नहीं बना है मूल्य ।-)

दयानन्दतिमिरभास्कर का उत्तर "भास्करप्रकाश" २।=) कमीशन छोड़कर २)

मूर्तिप्रकाशसमीक्षा =)

दिवाकरप्रकाश ।)

विदुरनीति भाषाटीकासह०।-)सजिल्द।≡)

श्लोकयुक्त वैदिक निघण्टु ≡)

वेदप्रकाश मासिकपत्र के प्रथम भाग १ वर्ष का ।।=)द्वितीय ।।=) तृतीय ।।=) चतुर्थ ।।=) चारोंभाग साथ कमीशन काटकर २) सजिल्द २।)

संस्कृत स्वयंसिखाने वाली संस्कृतभाषा प्रथम पुस्तक)।। द्वितीय पुस्तक -) तृतीय पुस्तक =)।। चतुर्थ ।=) चारों की कच्ची जिल्द।।≡)पक्की जिल्द ।।।)

ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दुपराग द्वितीयोंऽशः -)।।।

नियोगनिर्णय =)

अज्ञाननिवारण मूल्य -)।।

मुक्ति और पुनर्जन्म -)।।

सत्यार्थप्रकाशसङ्ग्रह बालकों को ≡)

वैदिकदेवपूजा प्रसिद्ध व्याख्यान -)

ईश्वर और उस की प्राप्ति -)

नमस्ते पर व्याख्यान)।

चाणक्यनीतिसार भाषा टीका -)।

प्रश्नोत्तररत्नमाला -)

भजनेन्दु-नयेबहुतसेभजनोंसहित -)

नालिकाविष्कार-जिस में प्राचीन तोप बन्दूक आदि के प्रमाण हैं)।।।

आर्यसमाज के नियम नागरी ≡)। १०० सैंकड़ा, अंग्रेज़ी में ।) १०० सैंकड़ा

व्याख्यानका विज्ञापन-जो चार जगह खानापुरी करके सब उपदेशकों के काम में आता है =) १०० सैंकड़ा

पौराणिकधर्म और थियासोफी)।।।

विवाह समय वर वधू के पठनीय मन्त्र अर्थसहित-इस में आर्यविवाहसङ्कलनाष्टक और विवाह तथा हवन की सामग्री भी छपी है)।।

पञ्चकन्याचरित्र नियोगविषय में)।।

नागरी रीडर नं० १ मूल्य)।

नागरी रीडर नं० २ मूल्य -)

रामायण का आल्हाछन्द दूसरा भाग)।।

लावनी फूट)।

सन्ध्योपासन)। १०० का १।) ५०० का ५)

पञ्चमहायज्ञ सूत्र)। में दो, ।।=) के १०० और २।।) के ५०० तथा ४) के १००० इकट्ठे लेकर बांटने योग्य हैं।

आर्यचर्पटपञ्जरिका प्रसिद्ध भजन)। के दो ३ आरती)। के ३ पुस्तक ।=) के १००

२।।) में ।।) और १०) में ३) कमीशन छोड़े जायंगे। सर्वसाधारण को। सामवेद उपनिषद्भाष्यादि पारमार्थिक और लौकिक सुधार के पुस्तक लेने का अच्छा अवसर है।।

पता-तुलसीराम स्वामी-मेरठ